बसन्त पंचमी, माघ सुदी पंचमी विक्रम संवत्. 2077, 16 फरवरी 2021

वाल्यूम 5 अंक-1

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

अर्द्ध वार्षिक

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

पूज्य स्वामी जी अखण्डानन्द जी महाराज (पीली कोठी)

प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज। पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज।।
अन्तर में स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना। निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना।।
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन। पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन।।
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे। तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे।।
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार। इसी भावना से अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ। केवल तुझे रिझाने को, बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

आश्रम के प्रतिदिन के कार्यक्रम

प्रातःकाल 4:30 बजे से 5:30 बजे तक - प्रभाती ब्रह्म कीर्तन
प्रातःकाल 5:30 - आरती
प्रातःकाल 5:35 बजे से 7:00 बजे तक - योगाभ्यास
प्रातःकाल 8:00 बजे से 9:00 बजे तक - गीता स्वाध्याय
सांयकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक - योगवशिष्ठ महारामायण की कथा तथा सन्त महापुरूषों द्वारा वेदान्त के भजन कीर्तन व उपदेश

सांयकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक - 16 अक्टूबर से 15 अप्रैल - शीतकालीन समय
सांयकाल 3:00 बजे से 5:00 बजे तक - 16 अप्रैल से 15 अक्टूबर - ग्रीष्कालीन समय

आश्रम के वार्षिक कार्यक्रम

गुरू पूर्णिमा (आसाढ़ सुदी पूर्णिमा)
पुण्य स्मृति बसन्त पंचमी (माघ सुदी पंचमी)

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वाल्यूम 5 बसंत पंचमी, माघ सुदी पंचमी विक्रम संवत् 2077, 16 फरवरी 2021 अंक -1

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा द्वारा वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, 178, गुंसाईपुरा, झांसी द्वारा मुद्रित किया गया व श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार झांसी से प्रकाशित।

- सम्पादक, श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

संस्थापक एवं संरक्षक
स्वामी हीरानन्द जी महाराज एवं
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

आदि सम्पादक
ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी
प्रधान सम्पादक : श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा
सम्पादक : श्री प्रमोद कुमार गुप्ता
सम्पादक मण्डलः
श्रीमती कुमकुम बिसरिया
डॉ. रंजना शर्मा
श्री अरविन्द देवलिया
श्री वैभव वर्मा

प्रकाशन कार्यालय :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहर गिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)
पिन कोड – **284003**
फोन : **(0510) 2360251**

अर्द्धवार्षिक
मूल्य : निःशुल्क वितरण के स्वाध्याय हेतु

मुद्रक : **वीर बुन्देलखण्ड प्रेस**
गुसांईपुरा, झाँसी (उ.प्र.) फोन : **0510–2332931**

भारत सरकार
प.सं. UPHIN/2016/73634

अनुक्रमणिका

क्रम.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा	3
2.	पुरोवाक्	श्री प्रमोद कुमार गुप्ता	4
3.	श्रृद्धांजलि	युगपुरूष महामण्डलेश्वर स्वामी परमानन्द गिरि जी	5
		महामण्डलेश्वर स्वामी केशवानन्द जी	5
		ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य	6
		स्वामी सतानन्द जी	7
		स्वामी पूर्णानन्द जी	7
		ब्रह्मचारिणी राघवेन्द्र चैतन्य	8
		स्वामी भूमानन्द जी	10
		श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा	11
		प. श्री चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	11
		डॉ. एस.डी. जोशी	12
		श्री तिलक राज शर्मा	12
		श्रीमती रश्मि मिश्रा	13
		श्री पकज मिश्रा	13
		श्री प्रमोद कुमार गुप्ता	14
		श्री आनन्द कुमार शिवहरे	15
		आचार्य श्री राजकुमार द्विवेदी	16
		डॉ. रंजना शर्मा	16
		श्रीमती कुमकुम बिसारिया	17
		श्री वैभव वर्मा	17
		श्री अरविन्द कुमार देवलिया	17
		श्री देवी शंकर मिश्रा	19
		श्री लाखन सिंह सिसौदिय	20
		डॉ. रेनू खरे	20
4.	जीवन – यात्रा ब्रह्मलीन, पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी	संकलित	21
5.	परम पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी के प्रवचनों एवं वक्तव्यों का संग्रह	पूर्व प्रकाशित आलेख पत्रिकाओं से संग्रहीत	24

सम्पादकीय...............

इस बसन्त पंचमी को गुरूदेव स्वामी विश्वम्भरानन्द जी के देहावसान को 25 वर्ष पूर्ण हो रहे है। इन विगत 25 वर्षों में गुरूदेव की आज्ञा से स्थापित झाँसी स्थित अखण्ड विश्वम्भरानन्द सन्त आश्रम गुरूदेव के द्वारा दिखाये गये वेदान्त के मार्ग के प्रचार एवं प्रसार में निरंतर कार्यरत है। गुरूदेव कहा करते थे कि यह विज्ञान का जमाना है और हमें अपने जीवन में विज्ञान को लाना चाहिये पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अध्यात्म गौण न हो जाये। परन्तु यह विडम्बना ही है कि आज प्रत्येक राष्ट्र विज्ञान का उपयोग अपने देश को विकसित करने की अनविरत प्रतिस्पर्धा में लगे हैं। जहाँ आवश्यकता एक की है वहाँ चार गुनी वृद्धि और उत्पादन करने की एक मानसिकता ने सभी को वशीभूत कर लिया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पदा का निरन्तर बढ़ता हुआ दोहन है। इस अनविरत अनैतिक प्राकृतिक सम्पदा के उपयोग का बहुत बुरा असर पर्यावरण पर पड़ रहा है। यद्यपि प्रकृति एवं पृथ्वी जीवनदायी है परन्तु वह अपनी समरसता बनाये रखने हेतु कोविड–19 जैसे विषैले वायरस को जन्म देने में भी नहीं हिचकती है। इसका केवल एक ही उपाय है कि मानव समाज विज्ञान के साथ–साथ आध्यात्म का सामंजस्य बनाये रखे। जहाँ आध्यात्म होगा वहाँ प्रतिस्पर्धा नहीं होगी। और उतनी ही प्राकृतिक सम्पदा को दोहन किया जायेगा जितनी जीवन उपयोग हेतु आवश्यक है।

गुरूदेव स्वामी विश्वम्भरानन्द जी आदि शंकराचार्य के द्वारा स्थापित ब्रह्मसूत्र भाष्य के विवेचक थे। ब्रह्मसूत्र भाष्य में आत्मा और अनात्मा का विवेचन किया गया है। तत्त्ववेत्ता आदि शंकराचार्य द्वारा विवेचित इस भाष्य को दो प्रधान भागों में विभाजित किया जा सकता है – दृष्टा और दृश्य। दृष्टा जहाँ तत्त्व है और सम्पूर्ण प्रतीतियों का अनुभव करने वाला है वहीं दूसरा तत्त्व दृश्य अनभव का विषय मात्र है। दादा गुरू अखण्डानन्द कहा करते थे। ''देखो–देखो देखने वाले को देखो'' अर्थात समस्त प्रतीतियों का अनुभव करने वाले इस तत्त्व आत्मन् से साक्षात्कार को। समस्त प्रपंचो का अनुभव करने वाले इस तत्त्व को आत्मा कहते हैं बाकी सब अनात्मा है। आत्मतत्त्व नित्य, निश्चल, निर्विकार, निराकार, असंग, कूटस्थ एवं ऐक्य है। मन बुद्धि से लेकर जितने भी प्रपञ्च है उनका इस आत्मा से कुछ भी लेना देना नहीं है। आत्मा का केवल अपरोक्ष अनुभव किया जा सकता है। उसका बोध न प्रत्यक्ष और ना ही परोक्षं रूप से इन्द्रियों के द्वारा किया जा सकता है। आत्मपद् में स्थित होने को आत्म साक्षात्कार कहते हैं और उसको प्राप्त करने के लिये ज्ञानी होना अति आवश्यक है। ज्ञानी पुरूष को ही सत् और असत् का ज्ञान होता है। जिस प्रकार अन्धकार से ही प्रकाश का बोध होता है उसी प्रकार असत् ही सत् का बोध कराता है। सत् ही आत्मा है जो अविनाशी, अचल, सनातन, कूटस्थ एवं साक्षी है। ज्ञानी पुरूष अपरोक्ष अनुभूति द्वारा आत्मपद में प्रतिष्ठित होता है। इस अवस्था में सत्(आत्मा) के अलावा सभी वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। दृष्टा और दृश्य एक सम हो जाते हैं।

❖ राजेन्द्र कुमार मिश्र
प्रधान सम्पादक

पुरोवाक्.............

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका का मूल उद्‌देश्य परम तत्त्व का बोध, वेदान्त ज्ञान द्वारा जन – जन तक पहुँचाकर भारतीय संस्कृति को अक्षुण्य बनाए रखने में एक शिलाखण्ड के रूप में सहायक रहे यह भाव सन्निहित है।

आश्रम से पत्रिका को प्रकाशित किये जाने का विचार आदि सम्पादक श्रद्धेय परम श्री पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी के मन में प्रस्फुटित हुआ था। अपने परम पूज्य गुरूदेव का स्मरण करके वर्ष 2005 गुरू पूर्णिमा से पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया, जो नियमित चल रहा है। सुधि पाठकों को स्वाध्याय हेतु सुलभता से प्राप्त कराए जाने की दृष्टि से प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा जी ने इसे निःशुल्क वितरित किये जाने का परामर्श दिया था।

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी विगत 21 दिसम्बर 2020 को अपने पंचभूतीय नश्वर शरीर को त्यागकर ब्रह्मलीन हुए। यह अंक उन्हीं की स्मृतियाँ संजोकर स्मृति विशेषांक के रूप में प्रकाशित किये जाने का संकल्प लिया गया। इसमें प्रकाशित विचार सभी के व्यक्तिगत अनुभवों से प्राप्त एवं उनके जीवन से सम्बन्धित जानकारी विभिन्न स्त्रोतों से संकलित कर प्रकाशित की गई हैं।

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी की सरलता और प्रेम ही है कि उनके काका गुरू युगपुरूष महामण्डलेश्वर स्वामी परमानन्द गिरि जी महाराज, श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम हरिद्वार के महामण्डलेश्वर श्री स्वामी केशवानन्द जी, गीता ज्ञान के प्रसार में समर्पित चिन्मय मिशन के सन्त, मानस समाज सत्संग समिति के अध यक्ष, राष्ट्रीय स्वयं संघ, सेवा समर्पण समिति एवं अनेक सन्त महापुरूषों के साथ–साथ अनेक महानुभावों ने इस विशेषांक में श्रृद्धांजलि अर्पित की है। सम्पादक मण्डल सभी ज्ञान चक्षुओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए, भविष्य में अपने ज्ञानबर्धक आध्यात्मिक आलेखों से पत्रिका को लोकमंगलकारी बनाए रखने में सदैव सहायक रहेंगे, ऐसी अपेक्षा करता है।

स्वामी जी के साथ परम श्रद्धेय युगपुरूष स्वामी परमानन्द गिरि जी एवं विभिन्न आध्यात्मिक एवं सामाजिक संगठनों से जुड़ाव को इंगित करने वाले छायाचित्रों के साथ उनके जीवन के कुछ दुर्लभ चित्रों का प्रकाशन भी इस विशेषांक में किया जा रहा है। महान सन्त की जीवन यात्रा को कुछ पन्नों में संजो पाना सम्भव नहीं है, फिर भी दृष्टि डालने के लिए उनका संक्षिप्त जीवन परिचय उद्धृत किया जा रहा है।

गृहस्थ जीवन में भी प्रारम्भ से ही उनका मुख्य उद्‌देश्य वेद, वेदान्त, उपनिषदों का गहन अध्ययन करके चिन्तन करने का रहा। तदुपरांत ईश्वरीय अनुकम्पा से सद् गुरूदेव पूज्य स्वामी विश्वम्भरानन्द जी का उन्हें सानिध्य प्राप्त हुआ एवं उन्हीं से संन्यास ग्रहण किया। मन – बुद्धि एवं आचरण से स्वयं को गुरूदेव के चरणों में समर्पित करके, तत्त्वबोध का साक्षात्कार पाकर ब्रह्मज्ञ अवस्था उन्होंने प्राप्त की, उनका निर्लिप्त जीवन इसको स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है। प्रस्तुत स्मृति विशेषांक में आश्रम से प्रकाशित पूर्व पत्रिकाओं में स्वामी जी के प्रकाशित हो चुके कुछ उद्‌बोधनों एवं विचारों को पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। ज्ञान सागर को गागर में समेटकर भक्तों एवं सुधि पाठकों को सहज रूप में उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह विशेषांक स्वामी जी के जीवन दर्शन द्वारा सभी पाठकों के जीवन को दिशा देने एवं प्रेरणा प्रदान करने में मार्गदर्शक सिद्ध होगा! ज्ञान सागर रूपी इस अंक से आप मोती रूपी सुविचार चुनकर उन पर आत्मचिंतन करके, अपने जीवन को ज्ञान एवं भक्ति का समुच्चय बनाकर अद्वैत परमचेतन तत्त्व को जानने के पथ पर चलें एवं हमारे प्रकाशन को सार्थक बनाऐं। इस स्मृति विशेषांक द्वारा स्वामी जी का दर्शन व विचार आप सभी प्रसाद के रूप में ग्रहण कर हमें अनुग्रहीत करें।

***

प्रमोद कुमार गुप्ता
सम्पादक

स्मृति - विशेषांक

ब्रह्मलीन परम पूज्य 1008 स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज

जन्म- चतुर्दशी ज्येष्ठ शुक्ल सं. 1991
(15 जून 1934)

ब्रह्मलीन- सप्तमी अगहन शुक्ल सं. 2077
(21 दिसम्बर 2020)

वह साक्षी अद्वितीय एवं अविनाशी है,
वही आत्मा है, वही "मैं" हूँ

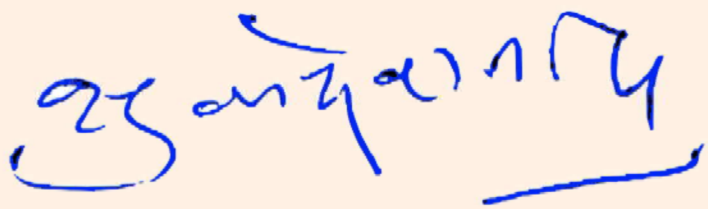

(स्वामी शुकदेवानन्द जी)

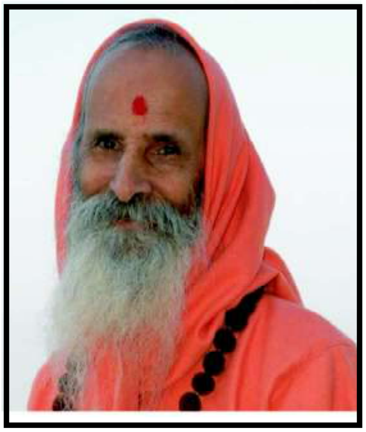

आशीर्वचन

युगपुरूष महामण्डलेश्वर
स्वामी परमानन्द गिरि जी महाराज

पूज्य ब्रह्मलीन विश्वम्भरानन्द जी महाराज बड़े विरक्त सन्त थे। उनका निष्कपट जीवन था, वह मेरे गुरूभाई थे जो पूरे जीवन गुरूदेव का ही प्रचार करते रहे। हम और पूज्य स्वामी विश्वम्भरानन्द जी, गुरूदेव के कुछ दिन साथ में ही रहकर रोटी बनाकर गुरूदेव की सेवा करते रहे। उसके बाद उन्होंने कई आश्रम भी बनाए, एक गुना में एक झांसी में।

उस झाँसी आश्रम में पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी जो अब ब्रह्मलीन हो गये हैं, वह मेरे से भी प्रेम करते थे। जब मैं झाँसी आता था तब मेरे पास आते रहे। पूज्य विश्वम्भरानन्द जी महाराज के आश्रम को भी बड़े प्रेम से संभालते रहे वो अब ब्रह्मलीन हो गये। इस बार का अंक जो स्वामी विश्वम्भरानन्द जी के नाम से पत्रिका निकलती है उनके विषय में रहेगा। मैं शुभकामना करता हूँ कि उनके जीवन से प्रेरणा लें और जो पत्रिका छपती है उससे प्रेरणा लें।

सन्त तो चलते – फिरते ग्रंथ होते हैं। सन्त स्वयं उपदेश होते हैं। सन्त जहाँ रहते हैं वह जगह तीर्थ होती है और जहाँ शरीर छोड़ते हैं वह तो बहुत ही पावन भूमि होती है इसलिए कभी – कभी सन्तों की समाधि बनाई जाती है। जहाँ सन्त की समाधि होती है तो लोग उसके दर्शन करते हैं। महर्षि अरविन्द जहाँ रहे वहाँ उनकी समाधि है वहाँ जाकर लोग उसके दर्शन करते हैं। अभिप्राय सभी की समाधि बनाई जाए ये मैं नहीं कहता। सन्त का जीवन आदर्श है, सन्त के उपदेश जीने के लिए होते हैं।

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी की स्मृति में जो इस अंक में आएगा वो आप अवश्य देखें और पढ़ें।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* * *

शिवो ऽहम्

महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामी केशवानन्द जी महाराज
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, हरिद्वार

ब्रह्मलीन श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज

स्वामी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन को श्री गुरूदेव भगवान की आज्ञानुसार समर्पित किया। संस्था के उत्थान एवं झाँसी आश्रम की व्यवस्था को उच्च स्तर पर पहुँचाया। हम देखते हैं कि संतों के प्रति महाराज जी के सम्मान का भाव अत्यन्त प्रशंसनीय रहा। संतों की व्यवस्था के लिये वे हमेशा तत्पर रहते थे। हम देखकर सोचते थे ऐसी व्यवस्था चलना असम्भव है, कभी किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं। जब कभी हम हरिद्वार से झाँसी आश्रम आये तो महाराज जी स्वयं पूँछा करते कि व्यवस्था में कोई कमी तो नहीं है। ऐसा पूर्ण संतमय उनका जीवन रहा। उनकी दृष्टि में कोई छोटे बड़े का भेद नहीं था। ऐसा विशुद्ध संत जीवन ब्रह्मलीन श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज का रहा।

जैसा स्वामी जी का समर्पण भाव अपने गुरूदेव के प्रति रहा वैसा समर्पण भाव बहुत कम ही दिखाई पड़ता है। अध्ययन का कुछ समय स्वामी के सानिध्य में रहने का मुझे भी मिला। मैंने देखा यदि कोई संत अध्यात्म मार्ग में उन्नति करता, तो स्वामी जी को अत्यन्त प्रसन्नता होती थी।

ब्रह्मलीन श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज संतों के लिये आदर्श प्रेरणा स्त्रोत रहे। आपने गुरू महाराज जी के उपदेशों को जन–जन तक पहुँचाते हुये दिनांक 21.012.2020 को दोपहर बाद तीन बजे श्री गुरू महाराज के चरणों का ध्यान करते हुये पंच भौतिक शरीर का त्याग किया। ऐसे महापुरूष के चरणों में हमारा शत्–शत् प्रणाम है।

ब्रह्मचारी गार्गी चैतन्य
चिन्मय मिशन सतना(म.प्र.)

ऊँ नारायण! नारायण! नारायण!

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी को भावपूर्ण श्रृद्धांजलि एवं उनके चरणों में श्रृद्धा–आदर सहित कोटि–कोटि सादर प्रणाम, वन्दन!

अपने चिन्मय मिशन झाँसी के कार्यकाल में शुरूआत में ही स्वामी जी से परिचय हुआ और उनके साथ एक पिता की भाँति सम्बन्ध की अनुभूति रही। उस समय संयोग कुछ ऐसा रहा कि चाहे वह मिशन का कोई कार्यक्रम हो, स्वाध्याय मंडल हो अथवा किसी और संस्था का कहीं कार्यक्रम हो, स्वामी जी का साथ एवं मार्गदर्शन हमेशा रहा। उनके रहते हुये कभी प्रतीत नहीं हुआ कि चिन्मय मिशन और वेदान्त आश्रम दो अलग अलग संस्थाऐं हैं।

सतों का संग मिल जाना सबसे श्रेष्ठ फल माना गया है।

संत मिलन सम सुख जग नाहीं

स्वामी जी से मिलने का प्रत्यक्ष प्रभाव यह था कि वह अपने सरल, मृदुल स्वभाव से किसी को भी अपना बना लेते थे। जो उनसे एक बार भी मिल लेता, उसे यही अनुभूति होती कि स्वामी जी से पूर्व से ही उसका कोई आत्मिक सम्बन्ध है। उनकी उपस्थिति एक विशेष प्रकार की बाहरी व आन्तरिक शुचिता, हृदय, की समता – सरलता और परमार्थिक आनन्द व शान्ति का संकेत देती।

वह दूसरों को मान देने में तनिक भी संकोच न करते और हर समस्या का उचित मार्गदर्शन एवं सहायता करते। वेदान्त आश्रम के कार्यभार को भी उन्होंने अन्त समय तक स्वास्थ्य अनुकूल न होते हुये भी बड़े ही सुचारू एवं व्यवस्थित ढंग से सम्भाला।

स्वामी जी के माध्यम से ही आश्रम से जुड़े कई सन्तों का दर्शन एवं सज्जन एवं सुधि ा भक्त जनों से मिलना हुआ। उनका हमेशा सहयोग एवं आर्शीवाद ही रहा कि चिन्मय मिशन का छोटा सा परिवार विराटता की ओर बढ़ा।

इसी श्रृंखला में उन्होंने निवास की व्यवस्था ठीक अपने आश्रम के सामने बत्रा जी के घर में कराई। उन्हीं के निमित्त से ऐसे सभ्य सुसंस्कृत परिवार का साथ मिला। वहाँ आकर कभी यह अनुभूति हुई ही नहीं कि हम लोग अपने परिवार से दूर हैं। ऐसी अनेकों सुन्दर स्मृतियों के लिए यह जीवन हमेशा आभारी रहेगा। हृदय में आपका स्थान एक अभिभावक संत की भांति हमेशा बना रहेगा।

आप जैसे संत तो नित्य परमात्मा में निवास करते हैं। उस सच्चिदानन्द को प्रणाम।

अन्त में आपकी हम सबके हृदय में अंकित एक अमिट पहचान, जिस शब्द के स्मरण से अभी भी आपकी वाणी सुनाई देती हैः–

।। शिवोऽहम् ।।

ऊँ शांन्ति! शान्ति! शान्ति।

* * * * * *

श्रद्धांजलि

स्वामी सतानन्द
हरिद्वार

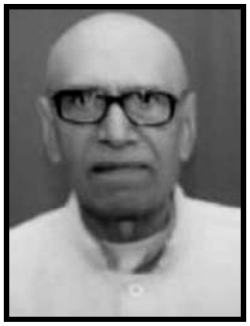

अर्चनीय, वंदनीय, ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 ब्रह्मलीन श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी प्रबन्धक अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम झाँसी उ0 प्र0 जो कि ललितपुर जिला के एक गाँव के देवलिया जमींदार परिवार से सम्बन्ध रखते थे, कुछ दिन पी.डब्लू.डी. में भी सेवा की। बहुत ही स्नेह मुझे उनकी ओर से मिला 1995 में सन्यास धारण करके कुछ दिन यहाँ हमारे गाँव खालड़ा(Khalra) पंजाब के प्रबन्धक रहे। जब के0एन0 सिंह यादव जी जो झाँसी आश्रम के पहले प्रबन्धक थे उन्होनें आश्रम संतों को संभालने की सलाह दी तो इनको वहाँ का प्रबन्धक बना दिया गया जो 1996 से जीवन पर्यन्त झाँसी के प्रबन्धक रहे और बहुत ही सुन्दर और सरल पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी के लिये कुछ भी कहना ऐसे है जैसे सूर्य को दीपक के द्वारा देखने का प्रयास किया जाये फिर भी मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धि के द्वारा कुछ तो कहता ही है मैं स्वामी सतानन्द एवं स्वामी जी गृहस्थ से पू.सद्गुरू स्वामी विश्वम्भरानन्द जी के शिष्य एवं सतसंगी रहे।

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी ने गुरूजी से कहा गुरूजी हमेशा इच्छा है अब हमारा जन्म नहीं होवे पूज्य स्वामी सद्गुरू विश्वम्भरानन्द जी ने कहा कि यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है अब जन्म नहीं होगा।

गुरू से ऐसा सुनकर स्वामी जी गुरू आज्ञा पर दृढ़ता से डट गये गुरू आशा ही अपना कर्तव्य समझ कर डट गये कर्तव्य पालन में बाधायें अवश्य ही आती, उन्हें भी आई लेकिन वे अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहे। मोक्ष मिला किसी ने गुरू से संसार माँगा तो मिला जिसने धन वैभव माँगा मिला लेकिन मनुष्य शरीर तो नर से नारायण बनने को ही मिलता नारायण के अलावा कुछ है नहीं लेकिन मनुष्य संसार देखकर भटक जाता तो जनम मरण में फंस जाता पूज्य स्वामी जी अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहकर हम सभी को, अपना लक्ष्य पाने की शिक्षा दे गये जो विवेकी होंगे वे लक्ष्य को ग्रहण कर लेंगे।

यदि कोई बुराई देखे तो बुराई देखने वाले भगवान में भी देखते यदि कोई एक उंगली दिखाता तीन उंगली खुद की तरफ इशारा करेगी चाहे अच्छाई देखे या बुराई इसलिए हमेशा मनुष्य को अच्छाई देखकर अपना हित करना चाहिए।

शिवोऽहम्

* * *

ऊँ श्री गुरू परमात्मने नमः

स्वामी पूर्णानन्द

अखंड दरबार की जय, सत्य सनातन धर्म की जय, सर्व सन्त महापुरूष की जय।

अनन्त श्री विभूषित ब्रह्मलीन पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री श्री 1008 स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज के श्री चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम करते हुये आपके चरणों में आपकी दी हुयी अनुभूति आपको श्रद्धांजलि के रूप में परम्परागत आपने जो अपने संतो एवं भक्तों को माला जैसी कड़ी जोड़कर आश्रम की व्यवस्था व्यवहारिक एवं संस्कृति के संस्कारों द्वारा चलाया एवं वेदान्त को अपने जीवन में उतारते हुये जीवन को मुक्त जीवन के भाव से जिया जैसे कि

जस मर्यादा जगत की बांध दयी करतार
राजा रंक जती सति करत सोई व्यवहार

हमने जो आपसे पाया है उसके लिये हम वाणी से व्यक्त नहीं कर सकते।

माता पिता अरूण भेय नीके। गुरू जन रहा सोच बड़ जीके।

आपकी कृपा से मैं अपने जीवन में परम्परा के अनुसार चलने की पूरी तरह से समर्पित होकर रहूँगा यही हमारी आपके चरणों में श्रद्धांजलि भावांजलि एवं पुष्पांजलि होगी, आपका दिया हुआ विचार अपने जीवन में उतारने का पूरी तरह से प्रयास करता रहूँगा।

* * *

ॐ ''पायो परम विश्राम''

ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य, चिन्मय मिशन, झाँसी

ब्रह्मलीन स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज की उस कृपा दृष्टि में इतना अपनत्त्व था, जिसने प्रथम भेंट में ही अपरिचितता को चिरकालिक मधुर सम्बन्ध में बदल दिया। आयु में बड़े होने पर भी उन्होंने जिस प्रेम और आदर से मेरा स्वागत किया, जो मानस की भक्ति '' सबहि मानप्रद '' का जीवन्त रूप था। पूज्य स्वामी जी के विशाल ह्रदय का बोध आश्रम में परमपूज्य गुरूदेव स्वामी चिन्मयानन्द जी को देख कर मुझे हुआ।

झाँसी केन्द्र बिन्दु पर प्रारम्भिक निवास पूज्य स्वामी जी के आशय में आश्रम में ही हुआ। यह भी इस बोध का एक करूणामय माता की तरह दिन रात ध्यान रखते थे। बिन मांगे ही वो आवश्यक वस्तुएं ऐसे प्रदान करते थे, जैसे अन्तर्यामी को सब पता होता है। अत्यन्त प्रेम से कहना पहले ब्रह्मचारी जी को परोसिये। कभी अपनी थाली में से प्रसाद स्वरूप इस अकिंचन को कुछ प्रदान करना ऐसी तृप्ति का अनुभव कराता था, जिसे शब्दों में कहना कठिन है। आश्रम की व्यवस्था को पूज्य स्वामी जी की ही कृपा का प्रसाद था वहाँ आश्रम के सामने मेरे निवास पर भी भोजन प्रसाद की व्यवस्था आश्रम में ही हुई, जो पूज्य स्वामी जी के अति उदार व्यक्तित्त्व का परिचायक था। रोज 10 से 11 बजे के बीच एक फोन आता था, जिसमें एक मीठी, सरल, रसमयी वाणी में सुनने को मिलता, ब्रह्मचारी जी आ जाओ प्रसाद पा लेते वे शब्द इतने प्रेम व अपनत्त्व से भीगे होते थे जो प्रसाद पूर्व ही तृप्ति का अनुभव कराते थे और बरबस ही आश्रम खिंचे जाते थे। जैसे माता अपने प्रिय पुत्र को खिलाये बिना नहीं खाती उसी प्रकार कभी देर हो जाने पर पूज्य स्वामी जी शांत भाव से प्रतीक्षा करते मिलते। मन में थोड़ा संकोच होता, देरी जाने पर अपराध बोध होता, पर जब उनके पास जाता, तो बड़े प्रेम से कहते ''ब्रह्मचारी जी जरूर कुछ पढ़ लिख रहे होंगे, अच्छा है, ऐसे ही व्यस्त रहो और फिर प्रेम से प्रसाद खिलाते। उस करूणासागर में तो जैसे दोष दृष्टि, क्रोध, खींझ आदि की लहरे ही नहीं थी।

कुछ दिनों पश्चात् सत्संग में गीता के श्लोकों का उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस उच्चारण से पूज्य स्वामी जी को विशेष प्रसन्नता होती थी, जो उस बालशास्त्री को प्रेरणा प्रदान करती थी।

'' मै अरू मोर तोर ते '' भाव से रहित उन विद्वान स्वामी जी के साथ अमूल्य लाभ प्राप्त हुआ वो था वेदान्त पर चर्चा। वेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तों को सरलता से समझाना तो स्वामी के लिए सहज ही था। उनकी शास्त्र निष्ठा उस सार्थक के लिए अनुकरणीय थी। एकांत के क्षणों में जब कभी कुर्सी पर शांत भाव से बैठे होते तो उस चंचल मनी द्वारा पूछने पर कि स्वामी जी क्या सोच रहे थे तो बडी गंभीरता और प्रेमपूर्ण स्वर में कहते ''बस अपने साथ था।'' यह सुनकर शास्त्रों में आए ''श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठ '' संत लक्षण का उनमें साक्षात् रूप दिखाई दिया। गुरू रूप से इस चंचल मनी को भी चिन्तन स्वाध्याय की प्रेरणा देते, इस निमित्त कुछ पुस्तकें भी उन्होंने प्रसाद स्वरूप दी जो आज भी साधना सत्संग में सहायक सिद्ध हो रही है।

उनकी रचनात्मकता प्रतिभा के दर्शन हुए। अपने अस्त व्यस्त लेखों को पूज्य स्वामी जी से सजवाना मुझे बहुत भाता था। स्वामी जी को बालबिहार के आयोजनों में बाल सुलभ वाणी में दिए उपदेश बहुत रोचक होते थे, जिन्हें बच्चे एकाग्रचित्त होकर सुनते थे। उनके द्वारा दिए गए संस्था, बालबिहार, सत्संग आदि सम्बन्धी सुझावों ने इस अनुभवहीन को निरन्तर मार्गदर्शन प्रदान किया।

यदा कदा उन महात्मा के साथ मन्दिर एवं धार्मिक स्थल पर जाने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। वहाँ अत्यन्त विनम्रता, सरलता और भक्ति देखकर प्रेरणा मिली –

'' पायउ ज्ञान भगति नहि तजहि ''

पूज्य संत प्रवर का व्यक्तित्त्व बहुआयामी था। कभी लगते थे सरल संत हैं कभी विद्वान शास्त्री, कभी

परम भक्त, कभी कर्मनिष्ठ, कभी बाल सुलभ और कभी सब से परे, शिवोऽहम ''। इस काल में शायद ही जीवन की कोई ऐसी बात हो जिस पर उनसे चर्चा ना हुई हो। उनकी सरल चित्तता ने तो इतना प्रभावित किया कि हर बात उन्हीं से पूछने का मन करता था। हमें मार्गदर्शन देने वाले तो जीवन में बहुत हो सकते हैं, किन्तु जिससे हम स्वयं मार्गदर्शन लेना चाहे ऐसे विरले ही होते हैं। परम पूज्य स्वामी जी जीवन में ऐसे ही व्यक्तित्त्व के धनी थे, जिनसे बात करके सहजता और निश्चिता का बोध होता था।

कभी कभी मन में एक विचार आता था कि इन दाता स्वामी जी के अनमोल प्रेम के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट करूँ भगवान की कृपा से ये शुभ घड़ी पूज्य माताजी के झाँसी आगमन पर आई। जब स्वामी जी ने स्वयं माताजी से अधिकार पूर्वक कहा कि ''माताजी आप कुछ राजस्थानी प्रसाद खिलाये। उन अनीह(इच्छारहित) ने कृपा व शांत इच्छा प्रकट कर बड़े प्रेम से इस अकिंचन की कुटिया में पधारकर भिक्षा ग्रहण की। इस माध्यम से उन्होंने कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा को पूर्ण कर हमें अनुग्रहीत किया।

वेद शास्त्र, गीता, रामायण आदि ग्रन्थों में जो संत लक्षण आते ही, उनका साक्षात् स्वामी जी के व्यक्तित्त्व में किसी न किसी सन्दर्भ में होता रहता था।

उनके जीवन का हर क्षण हमें साधुता सन्तता की ओर प्रेरित करने वाला था। देह में रहते हुए भी वे देह भाव से परे स्थित थे। किन्तु इस अल्पबुद्धि हेतु तो उनकी लौकिक कमी अब भी व्यथित करती है। अन्तर्मन को पूर्ण विश्वास है कि ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी का आशीर्वाद अन्तर्यामी रूप से सदा प्राप्त है ''हृदेशे अर्जुन तिष्ठति '' है। उनकी स्वयं की दृष्टि में उनकी स्थिति '' पायो परम विश्राम '' की हैं। पूज्य स्वामी जी संत थे इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उन्होंने संतत्त्व को गरिमा शोभा, श्रेष्ठता प्रदान की। उन पावन करूणावत्सल गुरू अवतार के पावन चरणों में भावभीनी श्रद्धांजलि।

पूज्य स्वामी जी

हर संग से असंग वो, हर मोह से निर्मोह थे।
हर काम से अकाम वो, हर मान से निर्मान थे।।
मन्द उस मुस्कान से, सन्ताप हर लेते थे वो।।
निर्दोष दृष्टिपात से, मान देते थे वो।।
सत्संग की दे प्रेरणा, उत्साह भर देते थे वो।।
गूढ़तम इन शास्त्रों को, सरल कर सिखलाते थे वो।।
गीता का वो परम ज्ञान, नित प्रातः रोज देते थे वो।।
भागवत् रामायण से भी, मोती चुन देते थे वो।।
वेदान्त का विचार हो, उपनिषदों का प्रचार हो।।
यही परम कल्याणकारी, जगत में व्यवहार हो।।
हर रंग में रंगे थे वो, हर रंग से परे थे वो।।
प्रेममयी कृतज्ञता से, नमन हम करते रहे।।
पथ आलोकित हो हमारे, आर्शीवाद बरसते रहे,
श्रृद्धांजलि हो ये हमारी, दर्शित मार्ग चलते रहे।।

स्वामी भूमानन्द
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द
संन्त आश्रम सरनागत डबरा
जिला ग्वालियर म0 प्र0

शिवोऽहम्

ऊँ श्री गुरू परमात्मने नमः

ईश्वर सेवा कल्प सत्, गुरू सेवा पल चार।
तो भी नहीं बराबरी, कहत कबीर विचार।।

परम आदरणीय परम श्रद्धेय परम पूज्य सद्गुरूदेव भगवान स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज के पावन श्री मुख से हमेशा नित्यप्रति श्रीमद् भगवतगीता अध्याय–2 श्लोक क्रमांक 72 का उच्चारण करते हुये कहते थे–

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य निमुष्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वा मृच्छति।।72।।

स्वामी जी सदैव स्वयं ब्राह्मी स्थिति में रहकर तथा जो उनके समीपस्थ साधकों की सदैव उसी स्थिति में रहने का उपदेश दिया करते थे। स्वामी हमेशा आत्मस्थ होकर उपदेश किया करते थे जिससे मुझे तो अब भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे मेरे सामने प्रत्यक्ष होकर मानो कहते हैं कि हम तो सदैव तुम्हारे साथ हैं मैं तो हमेशा दावे के साथ कहता हूँ कि मुझ पर स्वामी जी की विशेष कृपा एवं स्नेह है।

मेरी तो सभी सन्त महापुरूषों व सभी भक्तों से अनुरोध है कि ऐसे त्यागी तपस्वी वीतरागी गरू सेवी महापुरूष की प्रतिमा आश्रम में प्रतिष्ठित होनी चाहिए।
क्योंकि महाराज श्री ने विगत 24 वर्षो से तन–मन–धन से गुरू महाराज एवं आश्रम की निरंतर सेवा की तथा मुझ महाराज के चरणों सच्चा समर्पण किया जैसा समर्पण अन्य गुरू भाईयों में नहीं दिखता।
स्वामी जी उपदेश करते हुये कहते थे –

दुर्लभों मनुष्यो देहो, दुर्लभो तत्व दर्शनः।
दुर्लभों सतजावस्था, सद्गुरू करणाविना।।

जब स्वामी जी हमें बताते हैं तो हम कहते स्वामी जी यह बड़ा मुश्किल है तो वह दृढ़ता पूर्वक कहते तो अभ्यास और गुरू महाराज की कृपा से सब सुलभ हो जायेगा। परन्तु आज मुझे विश्वास हो गया कि स्वामी जी कहते थे मैं शरीर नहीं हूँ मैं तो शरीर का द्विष्टा साक्षी आत्मा हूँ। वही स्वामी जी ने चरितार्थ कर दिखाया जिस प्रकार से रामचरितमानस में बालि के सम्बन्ध में आया है –

रामचरन दृढ़ प्रीतिकरि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमि कंठुते, गिरत का जानइ नाग।।

अर्थ– श्रीराम जी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना ना जाने।।

इसी प्रकार से स्वामी जी की देहशक्ति न होने के कारण शरीर का सहजता से परित्याग कर दिया।

ऐसे ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय सद्गुरूदेव भगवान स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज के पावन दिव्याति दिव्य जीवन को प्रेरणा स्त्रोत मानते हुये उनके पावन चरणों में सिर रखते हुये उन्हें सादर अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि – भावांजलि – पुष्पांजलि समर्पित करते हुये मैं अपने को धन्य धन्य मानता हूँ तथा स्वामी जी से विनम्र निवेदन करता हूँ कि प्रभो मुझ दास पर सदैव आप अपना वरदहस्त बनाये रखने की कृपा करना।

शत् शत् नमन्

* * *

''श्रृद्धांजलि''

राजेन्द्र कुमार मिश्रा
अध्यक्ष, अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

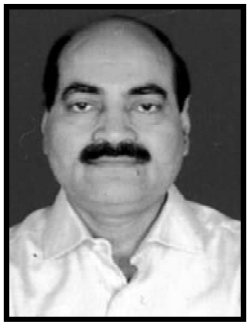

स्वामी शुकदेवानन्द एक कर्मयोगी थे। निष्काम भाव से अपने कर्मों का निष्पादन उनका निज स्वरूप था। जब उन्होंने गुरूदेव विश्वम्भरानन्द से सन्यास धारण कराने का आग्रह किया। तत्पश्चात् वर्ष 1995 में गुरूदेव ने झाँसी के आश्रम में इनको सन्सास धारण कराया। परन्तु एक कर्मयोगी अपने कर्म से विरक्त नहीं हो सकता, और वह शीघ्र ही झाँसी आश्रम के प्रबंधक के पद पर आसीन हुये पूर्ण रूप से अध्यात्म के प्रति समर्पण के कारण स्वामी जी रूपये पैसों को हाथ नहीं लगाते थे तदापि उनके प्रबंधन में कोई कमी नहीं रहती थी। वह पूर्ण विरक्त, कमल की तरह असंग थे। गुरू के प्रति अपार भक्ति और वैराग्य ने उनको तत्त्व को जानने वाले तत्त्ववेत्ता सांख्य योगी के समान कूटस्थ ब्रह्मनिष्ठ, निजप्रज्ञ, असंग, त्रिगुण पथ विचरते योगी समान बना दिया था। विगत 25 वर्षों से आश्रम के प्रबंधन का उत्तरदायित्व निभाते हुए स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी विगत 21 दिसम्बर 2020 को अपनी इहलीला समाप्त करते हुए गुरूतत्त्व में लीन हो गये। प्रबन्धक समिति, झाँसी आश्रम प्रबंधन में उनके सहयोग का हमेशा ऋणी रहेगा। उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि देते हुये, प्रबन्धक समिति '' विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता '' का यह अंक स्वामी शुकदेवानन्द को समर्पित करती है और यही कामना करती है कि उनकी आत्मा सदैव गुरूचरणों में समर्पित रहे।

* * *

ऐसे थे स्वामी शुकदेवानन्द

पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, मानस सत्संग समिति

ब्रह्मलीन स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज से लगभग पन्द्रह वर्ष पहले मेरी भेंट उनके आश्रम में हुई थी। यों तो वहाँ उपस्थित सभी संन्यासी गौरिक वस्त्र में थे, किन्तु स्वामी जी उनसे भिन्न दिखाई दिये। अत्यन्त विनम्र, शीलवान तथा मिलनसार। सरलता तो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग ही थी। कदाचित सरलता के कारण ही कोई साधु कहलाने का अधिकारी होता है। 'सन्त सरलचित्त जगत हित जानि, सुभाव सनेहु' 'मानस' में सन्त के गुण बताये।

स्वामी जी वेदान्त दर्शन के अनुगामी थे। वेदान्त के ज्ञाता थे। 'एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति' सिद्धान्त के प्रति अटूट निष्ठावान थे। उनके व्यवहार, सम्वाद तथा वक्तव्य से अद्वैत के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। आत्म रूप से सभी स्त्री, पुरूष, जड़ – जंगम जीव एक हैं। इसे वे मानते थे, उनके आचरण में इसे अनुभव किया जा सकता था। दूरभाष पर जब वे सम्बोधन करते थे – आत्मन् कह कर, मुझे पुकारते थे। शरीर के अशक्त होने पर भी उनमें आत्मबल की कमी न थी।

सामाजिक सरोकार में वे अग्रणी थे। उन्हें जिन आयोजन में बुलाया जाता था, वे जरूर जाते थे। मैंने कारगिल पार्क सीपरी बाजार स्थित 'मानस – समाज' के कार्यक्रम में जब – जब उन्हें आमंत्रित किया, वे अवश्य पधारे। आयोजनों में अध्यक्षता उन्हीं से कराते थे। उनका अध्यक्षीय अध्यात्मपरक तथा वेदान्त से सम्प्रक्त होता था। वे अन्य सम्प्रदायों से सामंजस्य बैठा लेते थे। वे खण्डन – मण्डन में विश्वास नहीं रखते थे निराकार – साकार उपासना के सम्बन्ध में उनके विचारों में उदारता थी। इसीलिए वे वैष्णव सम्प्रदाय के आयोजनों में स्वीकार्य थे। ऐसे अवसरों में उन्हें अलग नहीं समझा जाता था। तुलसी जयन्ती हो या मानस – सम्मेलन स्वामी जी कभी आने में नहीं चूके। इस वर्ष कोविड – 19 महामारी के कारण परम्परा निर्वाह के रूप में 'तुलसी भवन' कारगिल पार्क में संक्षिप्त मानस – सम्मेलन का आयोजन किया गया। स्वामी जी आने में अशक्त थे। उनका फोन मेरे पास आया – 'आत्मन – त्रिपाठी जी, आपने मुझे सदैव बड़ा सम्मान प्रदान किया है। इस बार मैं

आने में असमर्थ हूँ। क्षमा करिएगा।' इन शब्दों से मुझे आभास हो गया कि स्वामी जी का अन्तिम समय शायद आ गया और वैसा ही हुआ। स्वामी जी ने दो – तीन दिन में शरीर छोड़ दिया।

प्रायः चिन्मय मिशन के स्थानीय आयोजनों में स्वामी जी तथा मैं साथ होते थे। वे इन कार्यक्रमों में अध्यक्ष पद पर होते थे। उनके अध्यक्षीय सम्बोधन में गीता के उनके गहरे ज्ञान का परिचय प्राप्त होता था। उपनिषद् से भी उद्धरण उनके व्याख्यान में रहते थे। इससे उनके आध्यात्मिक ज्ञान की थाह मिलती थी। ज्ञानमार्गी होते हुए भी उन्हें भक्तिमार्ग से बड़ा प्रेम था। रामचरितमानस पर बोलते समय वे भक्ति का प्रतिपादन बड़े सौम्य तरीके से करते थे गीता को वे भक्ति प्रधान ग्रन्थ कहते थे। इससे उनके सामंजस्य पूर्ण हृदय का परिचय प्राप्त होता था।

स्वामीजी के ब्रह्मलीन होने से झाँसी के आध्यात्मिक जगत को बहुत बड़ी क्षति हुई है। एक शून्य सा स्थापित हो गया है। ऐसे श्रेष्ठ सन्त सम्प्रति दुर्लभ है। हमारी संस्था 'मानस समाज' के प्रति वे बड़ा स्नेह रखते थे। उन्हें खोकर हम बड़े उदास हैं। हम स्वामी जी को हृदय से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* * *

श्रद्धांजलि

डॉ0 एस.डी. जोशी

वेदांती धर्म – मर्मज्ञ प्रकांड विद्वान दयालु हृदय व विनम्र व्यक्तित्त्व के धनी ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी महाराज का इस संसार से महाप्रयाण शिवोऽहम मंडल झाँसी आश्रम के एक स्वर्णिम अध्याय का अवसान है। पूज्य स्वामी जी महाराज ने विगत 25 वर्षों से झाँसी आश्रम का प्रबंधन एवं संचालन निष्कलंक रूप से कुशलता पूर्वक निभाया। आपने सरकारी इंजीनियर की नौकरी का परित्याग कर लगभग 25 वर्ष पूर्व प्रातः स्मरणीय ब्रह्मलीन परम पूज्य गुरूदेव भगवान 1008 स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज से दीक्षा ग्रहण कर सन्यासी जीवन पथ पर यात्रा प्रारम्भ की। पूज्य स्वामी जी महाराज जीवन यात्रा के 87वें पड़ाव पर ब्रह्मलीन हुये जो कि हम सभी के विशेषकर झाँसी आश्रम के लिये अपूर्णनीय क्षति हैं। मैं परिवार व मित्रों सहित अश्रुपूर्ण, हृदयतल से श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

ऊँ शिवोऽहम्

* * * * * *

श्रद्धांजलि

तिलक राज शर्मा
अध्यापक खालड़ा मंडी पंजाब

स्वभाव के धनी होने के कारण संतों भक्तों को बहुत प्रिय थे। सब तरह की व्यवस्था बड़े सुन्दर ढंग से चलाते रहे। बुन्देलखण्ड का सेंटर होने से संत भक्त देर सबेर आते रूकते उनके खान पान से रहने की सब व्यवस्था करते। गुरू पूर्णिमा, बसन्त पंचमी के दो सम्मेलन और भण्डारे बडे सुन्दर ढंग से करते। आश्रम की पत्रिका, गुरूपदेश पुस्तकें समय अनुसार छपवाते थे और सभी को भेजते थे। घर परिवार को मोह छोड़कर सारी आयु शरीर छोड़ने तक आश्रम की सेवा करते हुये बिताई। मेरी ओर से इन्हीं शब्दों के साथ उनको श्रद्धांजलि पुष्पांजलि अर्पित करते हुये अपनी लेखनी बंद कर रहा हूँ।

तिलक राज शर्मा
अध्यापक खालड़ा मंडी
पंजाब

रश्मि मिश्रा
पत्नि–श्री आर.के. मिश्रा
अध्यक्ष श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द
संत आश्रम

ऊँ गुरू परमात्मने नमः
श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज को श्रद्धांजलि

स्वामी शुकदेवानन्द जी से प्रथम भेंट सन् 1994 में ललितपुर आश्रम में हुई गुरू पूर्णिमा पर्व के अवसर पर आयोजित भंडारे दौरान हुई थी। ललितपुर आश्रम में गुरूदेव विश्वम्भरानन्द महाराज की अध्यक्षता में सन्त समागम एवं गुरू पूर्णिमा का कार्यक्रम आयोजित था। इस अवसर पर स्वामी शुकदेवानन्द, जो उस समय गृहस्थ आश्रम में थे के द्वारा भंडारे का आयोजन किया गया था। वह बहुत शान्त एवं सुचारू रूप से भंडारे का संचालन कर रहे थे। उनके सौम्य व्यक्तित्व ने हम सबको बहुत ही प्रभावित कर लिया था।

विरत काल में उन्होने सन् 1995 में गुरूदेव से सन्यास प्राप्त किया। इस अवसर पर झाँसी आश्रम मे आयोजित सन्यास कार्यक्रम के साक्षी होने का भी हमें अवसर मिला। तदुपरान्त वह आश्रम के प्रबन्धक के पद पर शोभित हुये और निरंन्तर पिछले 24 वर्षो से लेकर देहावसान तक आश्रम की उन्नति, उसके निर्माण एवं दैनिक गतिविधियों में योगदान देते रहे। उनकी कार्यक्षमता, पारदर्शिता एवं कर्मण्यता ने सबको प्रभावित किया। उनके मृदु स्वभाव ने शीघ्र ही आश्रम के आसपास की बस्तियों में रहने वाले नागरिकों को आश्रम की दैनिक गतिविधियों में शामिल कर लिया। एक कुशल प्रबन्धक होने के साथ ही वह एक पूर्ण समर्पित सन्त भी थे। अनुशासन में रहना, कम बोलना एवं गुरू के आदर्शों पर चलना उनकी विरासत थी।

कोरोना महामारी के चलते सन् 2020 में उनसे भेंट न हो पाने का मलाल हमारे हृदय में हमेशा रहेगा। स्वामी शुकदेवानन्द सबके लिये सदैव प्रेरणा के स्त्रोत रहेंगे। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि सबको गुरू चरणों में यथोचित्त स्थान मिले।

* * * * * *

शिवोऽहम्

पंकज मिश्रा

हम सभी भक्तों के लिये यह दु:ख का विषय है कि हमारे अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम (झाँसी)के प्रबंधक श्री 1008 स्वामी शुकदेवानन्द महाराज जी अब हमारे बीच में नहीं है उन्होंने अपने संत जीवन में आश्रम की व्यवस्था को बहुत ही सुंदर और सुचारू रूप से जारी रखा। वह एक महान त्यागी धर्मनिष्ठ और समान दृष्टि वाले संत थे। जो समाज के लिए भी आत्म चिंतन करते थे स्वामी जी ने अपने झाँसी आश्रम को सुचारू रूप से चलाया वह प्रभाती, गीता पाठ एवम् सत्संग नियमित रूप से करते थे। गुरू पूर्णिमा व बसंत पंचमी पर्व बहुत अच्छी तरह से सम्पन्न कराते थे गुरूदेव भगवान स्वामी विश्वम्भरानन्द जी की पूर्ण आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आश्रम को समर्पित कर दिया प्रबंधक जी महाराज कहीं से आमंत्रण आने पर वहाँ अवश्य उपस्थित होते थे तथा अपने वक्तव्य से भक्तों को आत्म चिंतन और वेद ज्ञान का उपदेश देते थे। स्वामी जी का मेरे ऊपर आत्मीय स्नेह था वह मुझे हमेशा बेटा कहकर पुकारते थे गुरूदेव भगवान स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज व प्रबन्धक झाँसी आश्रम (स्वामी शुकदेवा नन्द जी महाराज) का आर्शीवाद सदा हम भक्तों पर बना रहे ऐसी मेरी कामना उनके चरणों में प्रार्थना है।

* * * * * *

भावांजलि

प्रमोद कुमार गुप्ता

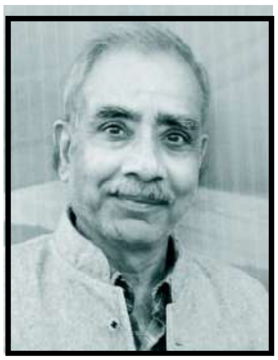

ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी का जीवन अपने गुरूदेव श्री पूज्य स्वामी विश्वम्भरानन्द जी को विशुद्ध अर्न्तमन से श्रृद्धा पूर्वक सदैव समर्पित रहा है। स्वामी शुकदेवानन्द जी के गुरूदेव जी ने उन्हें झाँसी आश्रम की व्यवस्था हमेशा देखते रहने की आज्ञा दी थी, जिसका जीवन पर्यंत पूरी जिम्मेदारी से उन्होंने प्रबंधक पद पर रहकर निर्वाहन किया। अपने शरीर के प्रति भी उनकी कोई आसक्ति नहीं थी। अंतिम समय के कुछ दिन पूर्व मैंने उनके गिरते स्वास्थ्य के बारे में उनसे चिंता व्यक्त की थी, उन्होंने सहज रूप मे कहा– इस शरीर का क्या..........जो कुछ भी करा रहे हैं या कर रहे हैं, सब गुरूदेव ही हैं। उन्हें जो कराना होगा करेंगे, सब अच्छा ही करेंगे। सच में ही सांसारिक विषयों से निर्द्वंदता, शान्त सांसारिक कामना एवं वासना से मुक्त मन – बुद्धि को प्राप्त कर अन्त समय पंचभूत शरीर को सहजता से छोड़कर, उन्होंने ब्रह्मलीन अवस्था प्राप्त की।

उनका सहज, सरल जीवन सभी को अपनी ओर प्रथम भेंट में ही खींच लेता था। समत्व बुद्धि उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी जिससे उनसे, मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामी जी की उन पर विशेष कृपा है। परिवारजनों के मिलने पर स्वामी जी का उनसे कोई व्यक्तिगत लगाव नहीं रहता था। जिस प्रकार हम सबके लिए उनकी परमार्थिक शुभचिंतक होने की दृष्टि रहती थी उसी प्रकार से अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति दृष्टि होती थी। स्वामी जी उनसे कोई रागात्मक भाव या कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे।

आध्यात्मिक विषयों की जटिलतम जिज्ञासा को सहजता से इस प्रकार शान्त कर देते थे कि उसके उपरांत मेरे अंदर कोई प्रश्न ही शेष नहीं रह जाता। दृष्टांत के रूप में स्वामी जी से मैंने कहा– प्रारब्ध और संचित कर्मों के प्रतिफल स्वरूप ही हमारे जीवन में जब सब कुछ निर्धारित होता है तब फिर हमारा अपने वर्तमान कर्मों के प्रति सजग रहने का क्या प्रयोजन? जब सब कुछ ही पूर्व निर्धारित है स्वामी ने उत्तर दिया– प्रारब्धवश आपका अभी मंदिर जाना निश्चित है परन्तु मन्दिर आकर आप सत्संग करते हैं या आपस में घर गृहस्थी की चर्चा, निन्दा आदि करते हैं अथवा मार्ग में ही शराब पीने लगते। इसका विचार करना आपके विवेक पर निर्भर है और वर्तमान में किये गये कर्मों से ही जीवन में आगे की दिशा का निर्माण होता है। इसलिए जीवन में विवेक–बुद्धि की सजगता आवश्यक है।

तत्त्वबोध करने में स्वामी जी की ज्ञान दृष्टि एवं जीवन को सार्थक करने के लिए उनकी आशीर्वाद वाणी मेरे मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। जीवन में आध्यात्मिक मार्गदर्शन के अलावा सांसारिक जीवन की व्यवहारिक समस्याओं एवं विषम परिस्थितियों में उनसे मुझे जो समाधान मिलते रहे, लेखनी उन्हें शब्दों में बांध पाने में समर्थ नहीं है। ईश्वरीय अनुकम्पा से मुझे जीवन में स्वामी जी का विशेष स्नेह प्राप्त हुआ, जिससे कि विविध प्रकार से चिन्तन करने के लिए उनसे दिशा प्राप्त होती रही। अब वह प्रत्यक्षतः नहीं मिल पाएगी, जिससे हृदय रिक्तता की अनुभूति कर रहा है।

विचारों की उत्कृष्टता एवं जीवन में अनुशासन उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। 86 वर्ष की उम्र में शीत ऋतु होने पर भी, उनका ब्रह्ममुहूर्त में स्नानादि एवं नियमित गीता पाठ सतत् चलता रहा। यहाँ यह कहना भी आवश्यक समझ रहा हूँ कि कुछ वर्षों से उनका माला से जाप करना छूट गया था, उन्होंने कहा कि प्रारम्भ में यह सब अन्तःकरण की शुद्धि के लिए साधन होते हैं अब ''एकान्त में मन परमतत्त्व में ही स्थित बना रहता है।'' स्वामी जी आश्रम के प्रबन्धन में वाणी से किसी को डांट भी देते थे इस विषय पर एकांत में हुई चर्चा

में उन्होंने बताया – शरीर रहते व्यवहारिक कर्म तो होंगे ही और व्यवस्था में कभी किसी को ऐसा कहना भी पड़ जाता है। परन्तु संतो का व्यवहार पानी पर खींची लकीर के समान होता है यानी मस्तिष्क में वह बना नहीं रहता अपितु तुरंत मिट जाता है जिससे आगे कोई राग–द्वेष बना नहीं रहता। आत्मनिष्ठ,निर्विकारी स्वामी जी के पास जब भी सत्संग में बैठता, समय का पता ही नहीं चलता लगता समय स्थिर हो गया है। उस समय उनकी वाणी के अलावा कुछ भी नहीं होता था, प्रार्थना करता हूँ कि उनसे हुई वार्ता सदैव ब्रह्मचेतन परमत्त्व का बोध कराने में साधन बन पाए।

विशेष रूप से प्रभावित करने वाली बात का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा – "स्वामी जी का गुणों से अतीत जीवन यानी गुणातीत स्थिति को मैंने करीब से अनुभव किया। गुणों का गुणों में बरतने का भाव एवं व्यवहार उनके जीवन में स्पष्ट देखने को मिला, तभी तो अभिमान रहित एवं इच्छा द्वेष आदि विकारों से वह सर्वथा दूर थे।"

उनकी सहज मुस्कान, शान्त, निश्चल नेत्र, पितृतुल्य स्नेह एवं आकाश में उपस्थित चिरवाणी मेरे साथ सदैव रहकर मुझ जीव को आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रेसित करने में सदा मार्गदर्शक हो, ऐसी कृपा की प्रार्थना के साथ यह मानस हृदय परम श्रद्धेय स्वामी जी को भावांजलि समर्पित करता है।

*** ***

'स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज' " एक परम सन्त "

आनन्द कुमार शिवहरे
बोद्धिक शिक्षण प्रमुख सीपरी नगर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ

संन्यासी आत्मनिष्ठ तो होते ही हैं, यदि समाज निष्ठ भी हों तो सोने में सुगंध कहावत चरितार्थ हो जाती है। स्वामी शुकेदवानन्द ऐसे ही संन्यासी थे, आत्मानन्द उनका व्यक्तिगत स्वरूप था। अपना उद्धार करते हुये समाज का मार्गदर्शन करना उसे सुधारना महान सन्त का कार्य है। स्वामी जी ऐसे ही संन्यासी थे। वे गृहस्थ रहते हुये भी सामाजिक कार्य करते रहे। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक थे समाज में व्याप्त असमानता के भाव के अग्रदूत, रहे। गृह त्याग के साथ इन्होंने अपने सामाजिक दायित्व का परित्याग नहीं किया। संन्यासी होने के साथ ही संघ की शाखाओं तथा कार्यक्रमों में सहभागिता कर अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे। सभी के घर भोजन करना, उनके सुख – दुख में सम्मिलित होकर समाज की कुरीतियों को दूर करने हेतु इस दिशा में कार्य करने वालों का मार्ग दर्शन कर वह सबके प्रेरणा स्त्रोत रहे।

वे वास्तव में सन्त थे। स्वभाव से सरल, व्यवहार में सहज थे। श्री राम चरित मानस की यह चौपाई उन पर पूर्णतया लागू होती थी। " सरल स्वभाव न मन कुटिलाई, जथा लाभ सन्तोष सदाई "

भौतिकता प्रधान इस कालखण्ड में ऐसे सन्त दुर्लभ हैं। मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि मैं उनके संपर्क में लगभग दस वर्षों तक रहा और इस बीच उन्हें समझने, उनसे प्रेरणा ग्रहण करने तथा उनके सन्त स्वभाव से प्रभावित होने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। इसे मैं अपनी एक उपलब्धि एवं भाग्य मानता हूँ।

स्वामी जी हमारे बीच नहीं है किन्तु उनके सन्त कार्य हमें सदैव प्रेरणा देते रहेंगे। किंचित संतत्त्व यदि हमारे जीवन में प्रवेश करता है तो हम अपने जीवन को धन्य मानेंगे। स्वामी जी के सौम्य, सरल तथा सिद्धांत प्रिय व्यक्तित्व को नमन। भूरि भूरि विनम्र श्रद्धांजलि।

*** ***

डा. रंजना शर्मा
नोएडा

स्वामी शुकदेवानन्द जी को श्रृद्धांजलि

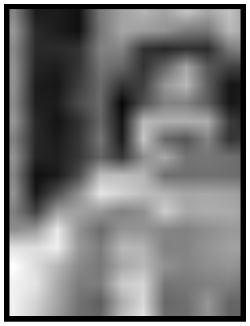

''जीवन क यह एक सच्ची कहानी है, मृत्यु एक दिन सबको आनी है।'' ईश्वर से बड़ा कोई नहीं उनकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। वो जो भी करते हैं अच्छा करते हैं क्योंकि जीवन–मृत्यु सब उनके हाथ में है, हमें बस यही प्रार्थना करनी चाहिए कि दिवंगत आत्मा को ईश्वर शांति प्रदान करें और उन्हें अपने चरणों में स्थान दें।

स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज एक अनोखे एवं अपूर्व व्यक्तित्व के धनी थे। मैं 'डॉ. रंजना शर्मा' उनके संपर्क में 1996 से आयी। उस समय स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज भी आश्रम में अक्सर आते थे। झाँसी में मैं अपने पूज्य पिताजी जज श्री 'जगदीश शरण मिश्र' जी के साथ अक्सर स्वामी जी से मिलने आश्रम जाया करती थी। वहाँ स्वामी शुकदेवानन्द जी का प्रेम भरा सानिध्य सदैव मिला।

उनका वह स्नेह, प्रेम, प्यार, अपनापन, सदैव मेरे अन्तर्मन को एक अपूर्व आनन्द और स्फुरण से भर देता था। उनके साथ जो भी जीवन में क्षण व्यतीत हुये उनकी मधुर स्मृति सदैव मेरे मानस पटल पर स्थित है जो समय–समय पर मेरा मार्गदर्शन करती रहती है।

मैं जब भी झाँसी जाती तो आश्रम जाने की एक ललक, उत्कंठा एवं बैचेनी मन में रहती कि आश्रम जाकर स्वामी जी का आर्शीवाद प्राप्त करूँ। आश्रम पहुँचने पर स्वामी जी के भी मुख मण्डल पर खुशी, अपूर्व प्रसन्नता दिखायी देती थी जिसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना सम्भव नहीं है, अपितु भावनाओं के द्वारा अनुभवन कर सकते हैं।

मुझे सदैव उनका व्यक्तित्व एक शान्त, प्रसन्न, स्थिर, सुदृढ़ एक सकारात्मक ऊर्जा से भरा हुआ प्रतीत होता था।

यद्यपि संन्यास जीवन में प्रवृत्त लेने के नाते स्वामी जी समस्त सांसारिक सीमाओं और मोह – बंधनों से मुक्त हो चुके थे, परन्तु फिर भी उनके आश्रम में हुयी इस क्षति को पूर्ण करना असम्भव है। स्वामी शुकदेवानन्द जी के जीवन की सार्थकता का अनुभव हमें सार्वजनिक जीवन में आप जैसे विलक्षण तत्वज्ञानी के सान्निध्य से होता है।

यह संसार तो प्रकृति के नियमों के आधीन है और परिवर्तन एक नियम है, शरीर तो मात्र एक साधन है। यह प्रकृति का ही नियम है कि जो आया है उसे जाना भी है और यही जीवन का अटूट सत्य भी है।

स्वामी शुकदेवानन्द जी की मुधर स्मृति, स्नेह, आदर्श, मार्ग दर्शन, आर्शीवाद हमारे लिये सदैव प्रेरणादायक रहेंगे।

* * * * * *

श्रद्धांजलि

आचार्य राजकुमार द्विवेदी
प्रबन्धक / सचिव सेवा समर्पण समिति

परम पूज्य श्रद्धेय शुकदेवानन्द जी महाराज के परमधाम गमन से सेवा समर्पण समिति उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करती है।

स्वामी जी, सेवा समर्पण समिति को अपने शुभाशीर्वाद के साथ समय–समय पर तन – मन – धन से हमेशा सहयोग प्रदान करते रहे। उनके इस अक्षय सहयोग के लिये समिति सदैव ऋणी रहेगी।

* * * * * *

श्रद्धा-सुमन

कुमकुम बिसारिया
सह – सम्पादक

परम सत्गुरू 1008 श्री विश्वम्भरानन्द जी महाराज के ज्ञानोपवन को अपनी सुवासित सुगन्ध से सुगन्धित करने वाला एक बहुमूल्य – पुष्प आज अपनी नश्वर पंखुडियों को बिखेर कर ब्रह्मलीन हो गया। अध्यात्म और वेदान्त की अमूल्य कवि निधि के अनमोल रत्न परम–पूज्य महाराज श्री शुकदेवानन्द जी आज हम आश्रम वासियों को अनाथ सा करके अपने पीछे एक गहन रिक्तता छोड़ गये हैं। परन्तु अपने उद्बोधन एवं शिक्षण से जो ज्ञाननिधि वे हमें प्रदान कर गये हैं, अपने उसी ज्ञान – स्वरूप मधुर एवं सरल प्रवृत्ति के साथ हम सभी भक्तों का पथ – प्रदर्शन करते हुये हम सब के समकक्ष सदैव जीवन्त रहेंगे। ईश्वर उनकी आत्मा को परम धाम में स्थान प्रदान करें यही कामना लिए मैं श्रद्धा – सुमन अर्पित करती हूँ।

शिवोऽहम्

* * * * * *

श्रद्धांजलि

वैभव वर्मा
झाँसी

ब्रह्मलीन गुरू महाराज स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी को सत्–सत् नमन। मैं ईश्वर का धन्यवाद देता हूँ कि मुझे ऐसे गुरू जी से मिलाया और उनसे गुरू ज्ञान की प्राप्ति हुई। गुरू महाराज जी जीवन पर्यन्त अपने प्रवचनों/प्रकाश से उनके भक्तजनों का मार्गदर्शन करते रहे। उनके द्वारा दिये गये प्रवचनों/ज्ञान को जिस किसी ने भी अपने जीवन में उतारा है, उसका कल्याण हुआ है। गुरू महाराज जी का कहना था कि प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक चाह सुख–शान्ति पाना है, जिसको वह बिना सत्संग के नहीं पाया जा सकता, जिसका संक्षिप्त सूत्र है – "Attach with the God and Detach from the World"। गुरू महाराज जी द्वारा बताया गया था कि मृत्यु सत्य है और शरीर नश्वर है, परन्तु फिर भी यह जानते हुये हमें गुरू महाराज जी की सदैव कमी महसूस होती रहेगी। आपका गुरू ज्ञान/आर्शीवाद सदैव हम पर बना रहे, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। हम सभी भक्तगण गुरू जी के बताये पथ पर चलें, यही उनको सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

शिवोऽहम्।

* * * * * *

कहाँ तुम चले गये............

अरविन्द कुमार देवलिया

परम पूज्य स्वामी श्रीमान शुकदेवानन्द जी से मेरा सांसारिक रिश्ता तब का है जब मैंने इस संसार में जन्म लिया वो मेरे लिये पूज्य दादाजी थे घर में सभी उन्हें पिताजी कहते थे तो हम भी उन्हें पिताजी कहने लगें हमें सम्बोधन के अनुरूप उनका बरद हस्त प्राप्त हुआ उन्होंने दादाजी होने के नाते अनंत लाड़ प्यार दिया साथ ही पिता की तरह से ही आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन किया। मैं परिवार में सबसे बड़ा था इस नाते मुझे उनका स्नेह दुलार सभी भाई बहिनों में सबसे अधिक मिला। बचपन में उनके साथ गाँव जाने की जिद करना उनका किसी भी प्रकार से कोई टॉफी आदि देकर बहलाकर छिपकर निकल जाना सब कुछ आज भी स्मृति पटल पर है। उनके ललितपुर आने पर हम भाई बहिनों में इस बात की होड़ लगी रहती थी कि आज कौन पिताजी के साथ सोयेगा पर या घर में किसी भी अन्य जगह भी सोंये परन्तु हमें प्रातः 04 बजे जागना ही पड़ता था क्योंकि हमारी दिनचर्या में उठकर सबसे पहले प्रातः स्मरण करना आवश्यक होता था। मेरे पिता श्री अशोक कुमार देवलिया ललितपुर में सरस्वती शिशु मन्दिर में प्रधानाचार्य थे मेरी भी शिक्षा उसी विद्यालय में हुई इस

बात से पिताजी बहुत प्रसन्न रहते थे इसका कारण था कि उस विद्यालय में होने वाली गतिविधियाँ थी। सरस्वती शिशु मन्दिर में स्कूल में पहुँचने से लेकर पूर्ण अवकाश तक प्रत्येक कार्य भारतीय संस्कृति के अनुसार ही होता है, प्रातः स्मरण सरस्वती वंदना, गायत्री मंत्र, शांति पाठ आदि भोजनावकाश में भोजन मंत्र अवकाश में वन्देमामरम् आदि। गाँव से आने पर वह हमसे ये सब सुनते थे। याद कराते थे और कहते थे कि यह सब केवल विद्यालय में ही नहीं करना है प्रतिदिन घर में भी करना है। जब भी उनके साथ गाँव जाना होता था तो खेतों पर अवश्य ही ले जाते थे और वहाँ के सभी कार्यो को बहुत ही अच्छे से समझाते थे। उनका प्रयास रहता था कि घर में सभी लोग अपने कार्य करने के साथ साथ अध्यात्म की ओर भी विचार करें।। उनके कहने पर ही हमारे चाचाजी ने प्रतिदिन रामचरितमानस का पाठ प्रारम्भ किया जिसे वह आज तक पालन कर रहे हैं। इस क्रम में मुझे वह अपने साथ ललितपुर के आश्रम में लेकर जाते थे हालाँकि मुझे वहाँ की बातें समझ नहीं आती थी परंतु फिर भी बड़े उत्साह से उनके साथ जाना होता था। गाँव में वह दोपहर में गाँव वासियों को रामायण, महाभारत, भागवत आदि कथाओं को सुनाते थे जब भी मेरा जाना होता था तो वह मुझसे ही पढ़वाते थे अर्थ वह समझाते थे इसके पीछे उनका उद्देश्य था कि मेरी इन धार्मिक पुस्तकों में रूचि जाग्रत हो। मैंने बचपन से ही देखा कि भगवान की भक्ति उनकी दिनचर्या में शामिल थी। इसके लिये वह हम सभी को भी प्रेरित करते रहे। जब उन्होंने गृहस्थ जीवन का त्याग कर संन्यास ग्रहण किया तब हम सब के लिये एक बहुत ही कष्टदायी क्षण रहा परन्तु प्रभु की कृपा रही कि परम पूज्य गुरूदेव ने उन्हें झाँसी में रहने का आदेश दिया जिस कारण से हम सभी को उनका सानिध्य मार्गदर्शन, स्नेह प्यार दुलार प्राप्त होता रहा। वो हमेशा हम सभी के बारे में जानकारियाँ लेते रहते थे उन्हें ज्योतिष का बहुत अच्छा ज्ञान था इस कारण वह हम लोगों को अपना क्षेत्र चुनने के बारे में मार्गदर्शन करते रहते थे। कुछ वर्ष पूर्व एक दिन जब मैं आश्रम में उनके पास बैठा था तभी आश्रम में संतों के भोजन व्यवस्था को लेकर चर्चा हो रही थी तभी मेरे मन में विचार आया कि क्यों न मैं भी सप्ताह में एक दिन संतो का भोजन कराने का प्रयास करूँ यह विचार मैंने पिताजी के समक्ष रखा तो वो प्रसन्न हुये और उन्होंने सहर्ष स्वीकृति देते हुये शुक्रवार का दिन निर्धारित कर दिया। इस कार्य के पीछे मेरा एक बहुत बड़ा स्वार्थ यह भी था कि इस कारण मुझे प्रति शुक्रवार पिताजी के दर्शन होते रहेंगे ईश्वर की कृपा से एवं पिताजी के आर्शीवाद से यह क्रम चल रहा है वह इस कार्य से बहुत प्रसन्न होते थे वह कहते थे कि संसार में अन्न दान से अधिक बड़ा कोई भी दान नहीं हैं इसलिये इसे कभी बन्द नहीं करना मैं जब शुक्रवार को आश्रम पर जाता था तो सर्वप्रथम उनका वाक्य होता था कि सब ठीक चल रहा है कोई परेशानी तो नहीं है चिन्ता मत करो सब ठीक हो जायेगा। अब यह वाक्य सुनने को नहीं मिलेगा। कोरोना काल में वह बहुत समय तक आश्रम में अकेले रहे मुझे उनकी चिन्ता होती थी मैं दिन में दो तीन बार फोन से जानकारी लेता रहता था वो कहते थे कि ये शरीर तो एक दिन जाना ही है क्यों इसकी चिन्ता करना तब इस सत्यता को गम्भीरता से नहीं लेता था परन्तु ऐसे अचानक एक दिन हमारे बीच से आप चले जायेंगे इसको स्वीकार करना कठिन हो रहा है। दिनांक 18 दिसम्बर 2020 शुक्रवार को मेरा उनसे अन्तिम मिलना हुआ उस दिन का एक एक क्षण मेरे सामने से नहीं हट पा रहा है काश ये पता होता कि आज के बाद उनसे मेरी अब कभी मुलाकात नही होगी तो मैं कभी उनके पास से नहीं हटता परन्तु यही तो ईश्वर का विधान है कि अगले पल की जानकारी आपको नहीं हो पाती कभी इसकी कल्पना भी नहीं की कि एक दिन आप सशरीर हमारे बीच नहीं रहेंगे। आप हम सभी के लिए क्या थे इसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता परन्तु आप हम सभी को बहुत याद आयेंगे। आप शारीरिक रूप से हमारे बीच न होकर भी हम सभी के बीच में रहेंगे। आप अपना आर्शीवाद हमेशा बनाये रखें। सभी पारिवारिक जनों की ओर से हम आपको अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। आपका जीवन हम सबको सदैव प्रेरणा देता रहेगा।

आपको शत् शत् नमन्

सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं

देवीशंकर मिश्र
मंत्री– मानस समाज
कारगिल पार्क, झाँसी

संसार में सब कुछ प्रयास करने पर मिल ही जाता है किन्तु सन्त का मिलना आसान नहीं होता। प्रयास भी सफल नहीं होते। सन्त ऐसी अमूल्य निधि है, जो प्रयत्न साध्य नहीं, कृपा साध्य है।

जब द्रवेहिं दीन दयाल राघव साध संगति पाइए।
जेहि दरस परस समागमादिक पाप रासि नशाइए। (वि.पत्रिका)
'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता' (रामचरितमानस)

ऐसे ही श्रेष्ठ संतो में से एक थे स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज जिनके सानिध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

विनम्रता के तो वे मूर्तिवान स्वरूप थे। उनके दर्शन से ह्रदय की देवृत्तियों का निषैध हो जाता था। कठोरता तो हो नहीं सकती थी, वे मृदुभाषी थे। जिससे बात करें वह निहाल हो जाये। उनका व्यक्तित्त्व प्रभावित करने वाला था। पहले ही दर्शन में मुझ पर उनका अमिट प्रभाव पड़ा। जो सर्वदा विद्यमान रहेगा।

एक संस्मरण मेरे स्मृति पटल पर सजीव है। उसका उल्लेख यहाँ करना चाहता हूँ । एक बार मेरी पत्नी बीमार पड़ी, मैं डॉ. के पास उन्हें ले गया। डॉ. ने उनकी हालत गंभीर बताई और भर्ती कराने को कहा। मैं एकाकी घर में दूसरा कोई नहीं। मैंने भर्ती कराने में असमर्थता व्यक्त की। उसी क्षण स्वामी जी का स्मरण हुआ और ऐसा लगा जैसे वे कह रहे हैं कि डा. से दवा ले लीजिए। घबराइए नहीं। सब ठीक हो जायेगा। मैने ऐसा ही किया और डॉ. से दवा लेकर पत्नी को घर ले आया। वे दो दिन में ही स्वस्थ्य हो गई। यह घटना मुझे सदैव स्मरण रहती है। 'मानस' की अर्द्धाली भी याद आती है :–

'सन्तदरस जिमि पालक हरई,, पातक रूप बीमारी दूर हो गई'

स्वामी जी के प्रति मेरी श्रद्धा इस घटना के बाद और बढ़ गई और मैं उन्हें भगवत स्वरूप ही मानने लगा। श्रद्धा और विश्वास ही तो भगवान की प्राप्ति में प्रमुख आधार हैं। इनके ही सम्बल से भक्ति प्राप्त होती है। सन्त भगवन्त स्वरूप ही होते हैं। **'जानेहु संत अनन्त समाना'।**

ब्रह्मलीन स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज को कोटिशः नमन। अधोलिखित पंक्तियाँ उनके श्री चरणों में सादर समर्पित :–

''गुरूदेव तुम्हें धर्मज्ञ कहूँ।
या धर्म का आत्म स्वरूप कहूँ।।
तव चिन्तन से जगदीश मिले।
सत्‌चित्‌ आनन्द का श्रोत कहुँ।
शरणागत हूँ, पदशीश धरूँ।।
तव चरणों में नित नमन करूँ।

* * * * * *

अनन्त श्री गुरू परमात्मने नमः

लाखन सिंह सिसौदिया
ग्वालियर

परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज पूज्य भगवान स्वामी विश्वम्भरानन्द जी के प्रमुख एवं सितारा शिष्यों में इसलिये थे कि पुराने पॉलीटेक्निकल जैसी डिग्री होने के बाद भी पूज्य विश्वम्भरानन्द जी महाराज से प्रेरणा लेकर शरीर की अन्तिम साँस तक आश्रम को आश्रम के संतों को आये हुये भक्तों को एवं चिन्मय मिशन युगपुरूष स्वामी परमानन्द जी को वो इसी प्रकार के सन्तों को बुलाकर अद्वैत वेदान्त की चर्चा सुनने सुनाने को हृदय से इच्छुक रहते थे। मैंने पुलिस सेवा में होते हुये भी पूज्य स्वामी जी से जीवन जीने का मार्ग दर्शन चाहा था तो स्वामी जी द्वारा अच्छा एवं दो टूक जबाव दिया गया कि लाखन भैया ये तो कुंजर स्नान जैसा होगा हाथी स्नान के बाद पुनः मिट्टी डाल ले तो स्नान का अर्थ क्या उनके इस पवित्र मार्ग दर्शन के अनुसार काफी समय तक जीवन जीन का प्रयास किया व हर प्रकार से मुझे अनायास ऐसा प्राकृतिक अच्छा सहयोग मिलता रहा कि मैं हृदय से पूज्य स्वामी जी एवं सभी संतो का आभारी हूँ कि मुझे सहयोग मिला रहा जिसका मैं पात्र नहीं था। अतः मैं चाहूँगा कि हम सभी स्वामी जी से प्रेरणा लेते रहें व जीवन में उसका अनुसरण करते रहें।

* * * * * *

अर्चनीय वंदनीय ब्रह्मनिष्ठ श्री श्री 1008 ब्रह्मलीन शुकेदवानन्द जी आपके श्री चरणों मे कोटि कोटि प्रणाम।

डॉ. रेनू खरे

आपका गुरूदेव मेरे जीवन में विशेष योगदान रहा हैं। आपसे 27 अक्टूबर 2006 के दिन दीक्षा प्राप्त कर मेरा इस पृथ्वी पर जन्म लेने का उद्देश्य पूर्ण हुआ था। आपसे जो मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ उसका अनुसरण करते हुये संसार सागर के दुःख सुख में न फंसते हुये अपने सच्चिदानंद रूप में स्थित रह कर आपकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार सकूँ बस यही श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। आपका सरल, सहज स्वभाव मेरे लिये हमेशा प्रेरणास्त्रोत रहेगा।

फूलों में छिपी सुगंध हैं गुरूदेव तारों में चमकता प्रकाश हैं गुरूदेव
सबका अनुष्ठान है मेरे गुरूदेव जब भी डोले मेरे जीवन की नैया
गुरूदेव बस पार लगा देना देकर अपने ज्ञान की छईंया
हाथ जोड़ कर करू में प्रार्थना सतगुरू न छोड़ना अपनी बेटी की नईया

* * * * * *

युगपुरूष श्री स्वामी परमानन्द गिरि जी साथ में आश्रम के प्रबन्धक एवं संरक्षक

पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी
साथ में चिन्मय मिशन के ब्रह्मचारी राघवेन्द्र जी

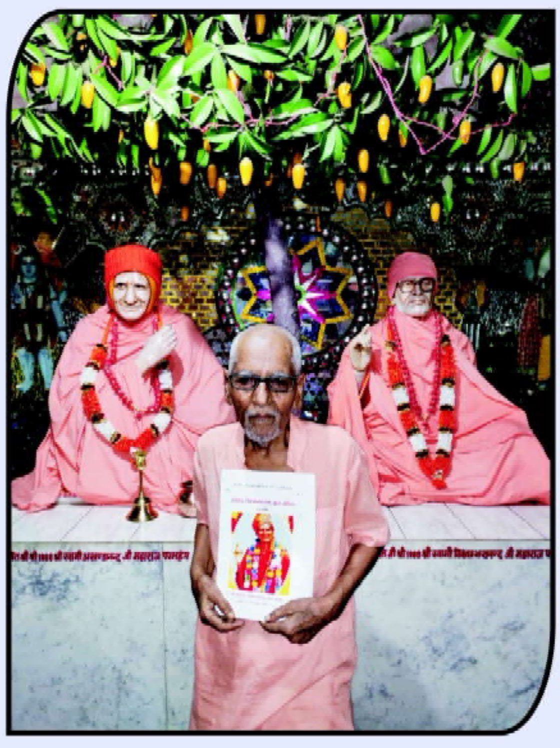

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका का विमोचन करते हुये स्वामी जी

मानस सम्मेलन कारगिल पार्क सीपरी झांसी कार्यक्रम में स्वामी जी का सम्मान करते हुये

मानस सत्संग समाज मंच पर उद्‌बोधन देते हुये परम पूज्य स्वामी जी़

कार्यक्रम में गणमान्य नागरिकों के साथ परम पूज्य स्वामी जी

जीवन यात्रा

परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी

परम पूज्य ब्रह्मलीन स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज जो संन्यास पूर्व श्री रामसहाय देवलिया के नाम से जाने जाते थे का जन्म संवत् 1991 ज्येष्ठ शुक्ल चर्तुदशी (दिनाँक 15 जून 1934) को ग्राम जामुनधाना कलॉ जिला ललितपुर उ0प्र0 में हुआ था इनकी माता का नाम श्रीमती सुभद्रा देवलिया एवं पिता का नाम श्री पल्टूराम देवलिया था।

स्वामी जी का परिवार प्रारम्भ काल से ही साधारण और सामान्य था, परिवार का जीवन यापन कृषि पर निर्भर था स्वामी जी के पिता श्री पल्टूराम देवलिया एक अत्यंत लोकप्रिय समाजसेवी व्यक्ति थे व उनका सहज सरल स्वभाव दूसरों की आर्थिक मदद करना एवं उनके दुःख में सदैव शामिल होना आदि था। वह अस्वस्थ्य व्यक्तियों को दवा देने का कार्य किया करते थे उन्हें आयुर्वेद का विशेष ज्ञान था। वह जरूरतमन्दों को निःशुल्क दवा भी देते थे उन्होंने अपने अथक प्रयास से अपनी कृषि योग्य भूमि का विस्तार करके उसे लगभग 125 एकड़ तक कर लिया था।

स्वामी जी के जन्म के एक वर्ष के पश्चात् ही उनकी माताजी का देहान्त हो गया था। तथा दुर्भाग्यवश दस वर्ष की आयु होने पर, इनके पिता का भी देहान्त हो गया था। जिससे इनके सम्पूर्ण लालन पालन का भार चाचा श्री परमानन्द जी एवं चाची श्रीमती कांती बाई ने किया। प्रारंभिक शिक्षा उन्होंने अपने गाँव में ही प्राप्त की। उपरान्त लखनऊ से पॉलीटेक्निक की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1953 में उनका विवाह ललितपुर के प्रतिष्ठित जमींदार श्री हरदेवप्रसाद चौबे जी की पुत्री जगदम्बा देवी से हुआ था। विवाह उपरांत उनकी पाँच सन्तानें दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हुयीं। उनका चयन ललितपुर नगर पालिका में जूनियर इंजीनियर के पद पर हो गया। कुछ समय बाद उनका चयन सिंचाई विभाग में हो गया। कुछ वर्षों तक इस विभाग में कार्य करने के उपरांत वह सार्वजनिक निर्माण विभाग इलाहाबाद में ज्वाइन करके वहीं रहने लगे। अनेक स्थानों पर उनका स्थानान्तरण होता रहा। उत्तरकाशी में कार्यरत रहने के दौरान उनको प्रोन्नत कर इंजीनियर के पद पर अल्मोड़ा भेज दिया गया। उन्होंने सेवाकाल में ईमानदारी एवं पूर्ण निष्ठा से कार्य किया। स्वामी जी की दिनचर्या युवावस्था से ही अनुशासनात्मक थी। वह प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाते थे अपनी दैनिक क्रिया करने के उपरांत प्रतिदिन गीता का अध्ययन करना एवं पूजा पाठ करना उनका नित्यप्रति का क्रम था। इसके उपरांत ही वह अपने दिन के कार्य प्रारम्भ किया करते थे एवं नियमित रूप से प्रतिदिन संध्यावन्दन करना उनकी दिनचर्या में शामिल था। कितना ही आवश्यक कार्य क्यों न हो परन्तु उनका यह नियम कभी नहीं टूटता था। युवावस्था से ही स्वामी जी का जुड़ाव आध्यात्म की ओर रहा। उत्तरकाशी में नौकरी के दौरान उनका सम्पर्क, वहाँ के एक सन्त से हुआ जिनसे स्वामी जी बहुत प्रभावित थे एवं वह सायंकाल उनके पास बैठकर घंटों सत्संग किया करते थे। स्वामी जी के ऊपर संतश्री की विशेष अनुकम्पा थी। एक दिन स्वामी जी से उन्होंने कहा – कि तुम इस नौकरी करने के लिये नहीं बने हो, तुमको तो जीवन में कुछ अलग प्रकार के कार्य करना है। उन्होंने अपने सिद्धांतों पर अडिग रहते हुये, कभी किसी प्रकार की रिश्वत स्वीकार नहीं की जिसके कारण उनके अपने उच्च अधिकारियों से मतभेद बने रहे स्वामी जी को सरकारी नौकरी करना पसंद नहीं आया जिससे उन्होंने सन् 1969 में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

इसके उपरांत अपने पैत्रिक गाँव आकर खेती का कार्य करने लगे साथ ही वह ठेकेदारी भी किया करते थे।

राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत स्वामी जी का मन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़ गया बहुमुखी व्यक्तित्व होने के कारण विश्व हिन्दू परिषद् एवं भारतीय किसान संघ के भी सदस्य रहे। गाँव में सभी लोग उनका बहुत ही सम्मान किया करते थे, उम्र व योग्यता के कारण सभी लोग उन्हें ओसियर दादा के नाम से पुकारते थे गाँव में किसी प्रकार की समस्या आने पर ग्रामवासी, स्वामी जी से सदैव सलाह लेने आते रहते थे। स्वामी जी की पठन–पाठन में विशेष रूचि बचपन से ही थी। जिसके कारण घर पर ही छोटा सा पुस्तकालय बन गया था। उसमें बहुत सी धार्मिक पुस्तकें संग्रहीत थी। स्वामी जी जब कभी भी खेत पर जाते थे तो उनके पास कोई न कोई पुस्तक अवश्य ही साथ रहती थी। वह घर पर भी गाँव के लोगों को बैठाकर रामायण, महाभारत आदि धार्मिक पुस्तकें पढ़कर सुनाते थे जिससे उनके समय का सदुपयोग होता था। स्वामी जी को ज्योतिष का भी बहुत उच्च कोटि का ज्ञान था। उन्होंने अपना निवास ललितपुर महावीरपुरा में बनाया था। पारिवारिक बंटवारा में यह मकान उनके चाचाजी के हिस्से में चला गया इस कारण उन्होंने अपना निवास स्थान ललितपुर स्टेशन रोड सिविल लाइन्स में बना लिया था। अपनी धार्मिक प्रवृति के कारण वह अपने घर के पास स्थित राम धाम अखण्ड आश्रम ललितपुर में जाने लगे। जहाँ पर होने वाले प्रवचनों से वह बहुत प्रभावित हुये। इस दौरान उनका सम्पर्क आश्रम के संचालक श्री लक्ष्मी नारायण श्रीवास्तव जी (जो कि सन्यास के बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुये) से हुआ। श्रीवास्तव जी स्वामी से बहुत ही प्रभावित रहते थे वह उनका बहुत सम्मान करते थे आश्रम की प्रत्येक धार्मिक गतिविधियों में वह स्वामी जी की सलाह लिया करते थे। आश्रम में जाने के दौरान उनकी भेंट सद्गुरू स्वामी पूज्य विश्वम्भरानन्द जी महाराज से हुई जिनसे वह बहुत प्रभावित हुये, बाद में उन्होंने उनसे ही दीक्षा ग्रहण करने का निर्णय लिया और उन्हें अपना गुरू मान लिया। स्वामी जी अपने गुरूदेव के सत्संग को कभी भी नहीं छोड़ते थे जब भी गुरूदेव का आगमन ललितपुर हुआ करता था स्वामी जी अपने प्रत्येक कार्य को छोड़कर उनके सत्संग में सदैव शामिल हुआ करते थे। सतों को अपने घर पर भोजन कराना, सत्संग करना उनका दैनिक कार्य बन गया था। गाँव में कृषि कार्य करते हुये जब भी उन्हें समय मिलता वह ग्रामवासियों के साथ सत्संग करते थे घर पर अनेक लोग आकर स्वामी जी के सत्संग में शामिल हुआ करते थे। ग्रामवासियों के कल्याणार्थ स्वामी जी ललितपुर आश्रम में आने वाले संतो एवं गुरूदेव को अपने गांव ले जाकर 3–4 दिवसीय सत्संग कार्यक्रम का आयोजन किया करते थे। यह कार्यक्रम वर्ष में 2 या 3 बार अवश्य ही सम्पन्न होता था। जिसमें स्वामी जी को बहुत आनन्द की अनुभूमि होती थी। इस अवधि तक स्वामी जी के दोनों पुत्रों का एवं दो पुत्रियों का विवाह हो चुका था व बड़े पुत्र ललितपुर में रहकर नौकरी करने लगे थे एवं छोटे पुत्र कृषिकार्य में स्वामी जी का साथ देते थे।

स्वामी जी के मन में संन्यास ग्रहण करने का विचार आने लगा उन्होंने गुरूदेव से आज्ञा मांगी परन्तु स्वामी जी की छोटी पुत्री का विवाह न होने के कारण गुरूदेव ने उन्हें आज्ञा नहीं दी। सन् 1994 में उन्होंने अपनी छोटी पुत्री का विवाह कर, अपनी जिम्मेदारी पूर्ण की। उनका लक्ष्य संन्यास ग्रहण करना था और वह सन् 1995 में दीपावली की भाई दोज के अगले दिन प्रातः गाँव से गुरूदेव स्वामी विश्वम्भरानन्द जी के पास चले गये एवं उनसे से आज्ञा प्राप्त करके संन्यास ग्रहण किया। उपरांत वहाँ से वह पंजाब के खालड़ा मंडी संत आश्रम में पहुँच गये। संन्यास लेने की जानकारी उन्होंने परिवार

को पूर्व में नहीं दी थी, उनके बड़े सुपुत्र अशोक देवलिया को जब उनके संत होने की जानकारी मिली वह गुरूदेव स्वामी विश्वम्भरानन्द जी से मिलने पहुँच गये। उन्होंने गुरूदेव से प्रार्थना की, आप कोई ऐसा मार्ग बतायें जिससे कि मैं अपने पिता से अलग न हो पाऊं और पिताजी की इच्छा का सम्मान भी बना रहे। उस पर गुरूदेव ने स्वामी जी को आज्ञा दी, कि शीघ्र ही झाँसी में आश्रम का निर्माण होने वाला है। वह झाँसी में रहकर ही अपने संन्यास धर्म का पालन करते हुये संत का जीवनयापन करें, साथ में झाँसी आश्रम की पूर्ण जिम्मेदारी का निर्वहन करने के लिये कहा। जिसका स्वामी जी ने अन्त समय तक पूर्ण निष्ठा से पालन किया।

अखंड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम झाँसी के प्रबंधक पद पर कार्य करते हुये आश्रम का विस्तार सुनियोजित ढंग से किया। स्वामी जी के प्रबन्धक के पद पर कार्य करते हुये जनहित एवं सामाजिक गतिविधियों के आश्रम में कार्य हुये 11 दिसम्बर 2013 को नेत्र विशेषज्ञों द्वारा निःशुल्क नेत्र परीक्षण का कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें 300 व्यक्तियों का नेत्र परीक्षण एवं 35 व्यक्तियों के मोतियाबिन्द ऑपरेशन को सम्पन्न कराया गया। स्वामी जी झाँसी नगर के विभिन्न सामाजिक एवं आध्यात्मिक संस्थाओं में ससम्मान वक्ता के रूप में आमंत्रित किये जाते थे। कार्यक्रमों में पहुँचकर वह अपने आशीर्वचन से सभी को अभिभूत करते रहे, जिन्हें भविष्य में भी स्मरण किया जाता रहेगा। उन्होंने आश्रम में रहते हुये अपने परिवार जनों को परेशानी आने पर उचित सलाह एवं मार्गदर्शन तो दिया किन्तु किसी भी प्रकार का आर्थिक लाभ प्रदान करने का मन में कभी कोई विचार भी नहीं किया। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उनका बहुमुखी व्यक्तित्व समष्टि के लिये सदैव तन–मन से कार्य करता रहा।

राष्ट्रीयता के साथ भारतीय संस्कृति का समुच्चय उनके जीवन में स्पष्ट देखा जाता है। स्वामी जी के अन्दर प्रारंभकाल से ही राष्ट्र प्रेम की भावना रहने के कारण वह झाँसी के अनेक सामाजिक संगठनों से जुड़े रहकर समाज सेवा का कार्य करते रहे। वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यक्रमों में जाते रहे वहाँ पर उनकी अध्यक्षता में अनके कार्यक्रम सम्पन्न किये गये। चिन्मय मिशन के कार्यक्रम गीता ज्ञान यज्ञ आदि में शामिल होकर अपने ज्ञानपुंज से वहाँ भी भक्तों को अपने वचनों से आशीर्वाद देकर उर्जावान करने का कार्य किया। कारगिल पार्क सीपरी बाजार झाँसी के होने वाले मानस सम्मेलन के कार्यक्रमों में वह प्रतिवर्ष आमंत्रित किये जाते रहे वहाँ उन्हें ससम्मान मंचासीन किया जाता था। स्वामी जी सामाजिक कार्यों में लोक कल्याण का भाव रखते हुये सेवा समर्पण समिति में पहुँचकर गरीब एवं झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों की सहायतार्थ कार्य करते रहते थे। स्वामी जी के अथक प्रयास से गुरूपूर्णिमा वर्ष 2005 विक्रम संवत् 2062 से आश्रम मे अर्द्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन वेदान्त के प्रचार प्रसार को दृष्टिगत रखते हुये आध्यात्मिक लेखों का प्रकाशन करने की नींव डाली गयी एवं उन्होंने पत्रिका का सफल संपादन किया।

हम सभी का मार्ग दर्शन करते हुये स्वामी जी सम्वत् 2077 अगहन शुक्ल सप्तमी (21 दिसम्बर 2020) दिन सोमवार को दोपहर लगभग 3:00 बजे झाँसी आश्रम में ध्यानस्थ अवस्था में ब्रह्मलीन हुये। स्वामी जी के शरीर को महामण्डलेश्वर स्वामी केशवानन्द जी की सहमति से परिवार जनों से चर्चा उपरांत उनकी जन्मभूमि में ही भू समाधि देने का निर्णय लिया। जिसके लिये 22 दिसम्बर 2020 को सुबह 10 बजे स्वामी जी को उनकी जन्मस्थली ले जाया गया। स्वामी जी को महामण्डलेश्वर स्वामी केशवानन्द जी अन्य संतों एवं झाँसी के भक्तों और ग्राम वासियों के अपार जन समूह के साथ उनके परिवार जनों की उपस्थिति में ग्राम जामुनधानाकलाँ (जाखलौन) जिला ललितपुर (उ0प्र0) में संन्यास की परम्परानुसार समाधिस्थ किया गया।

* * * * * *

साक्षी

जिज्ञासु को विचार करना चाहिए कि तू कौन है और मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरी माता कौन है तथा पिता कौन है जब इस पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करते हैं तो हम सारी सृष्टि में एक ही चेतन को वस्त्र में सूत की भाँति अन्वित देखते हैं एक ही चेतन जो चींटी से लेकर हाथी तक सब जीवों की आत्मा है वही चेतन नाना रूपों में प्रतीत होता है।

मैं चेतन हूँ मेरा कभी अभाव नहीं होता है, गहन सुषुप्ति में जब हमारी सतस्त इन्द्रियाँ मन एवं बुद्धि सहित जड़ता को प्राप्त हो जाती है, उस समय यदि कोई हमारा नाम लेकर पुकारे मैं जागकर उत्तर देता हूँ तथा जागने पर मैं अनुभव करता हूँ कि बहुत आनंद से सोया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सुषुप्ति में भी मैं आनंद का अनुभव करने वाला उपस्थित था। जैसे कोई सिपाही पहरे पर हो और वह कहे कि यहाँ से कोई नहीं निकला तो इसका तात्पर्य है कि वह सतत् जाग रहा था। इससे यह सिद्ध होता है कि सुषुप्ति में '' मैं '' जागता था और स्वप्न में जो कुछ भी दृश्य हैं उसका मैं ही दृष्टा हूँ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वप्न में, ''मैं'' ही रहता हूँ। जाग्रत में इन्द्रियाँ एवं मन के सहयोग से संसार में व्यवहार करता हूँ और बुद्धि से निर्णय लेता हूँ। इसको यदि हम दूसरे शब्दों में कहें तो कहना पड़ेगा कि जाग्रत अवस्था में ''मैं'' आत्मा मन बुद्धि एवं इंद्रियों के सहयोग से सारा व्यवहार कर रहा हूँ। अहंकार सहित मन एवं बुद्धि मेरे द्वारा ही प्रकाशित है। मैं इनसे अलग हूँ स्वप्न में जब इंद्रियाँ सोती है मन स्वप्न को रचता है तो ''मैं'' साक्षी रूप होकर स्वप्न देखता है तथा सुषुप्ति में मन एवं बुद्धि सो जाती है तब भी मैं साक्षी रूप से आनंद का अनुभव करने वाला जागता हूँ अतः साक्षी का जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं मे कभी अभाव नहीं है।

वही साक्षी जो जाग्रत में जाग्रत अवस्था का स्वप्न प्रकाशक है। स्वप्न में स्वप्न का प्रकाशक है और सुषुप्ति का अनुभवकर्ता भी वही है वही सत् स्वरूप एवं चेतन स्वरूप है।

दृष्टांत। एक बैंक मैनेजर को सूचना मिली कि उसके घर में आग लग गयी है वह भागा–भागा घर पहुँचा उसे पता चला कि घर पर आग बुझाने का प्रयास हो रहा है सामान भी बाहर निकाला जा रहा है लेकिन छोटा बच्चा नहीं दिखाई दे रहा है। उसने कहा बच्चे को निकाला कि नहीं तो उसे पता चला कि बच्चे को निकालना भूल गये तो उसने कहा जो बच्चे को निकाल देगा उसे एक लाख रूपया देंगे लेकिन वो खुद आग में कूदा नहीं इसका तात्पर्य यह है कि धन से प्यारी संतान होती है और संतान से प्यारा अपना शरीर, शरीर से प्यारी आत्मा है। क्योंकि लोग बीमारी से परेशान होकर आत्महत्या कर लेते हैं अतः यह सिद्ध हुआ कि आत्मा ही आनंद स्वरूप है एवं परमप्रिय है।

अतः आत्मा ही सत् स्वरूप एवं चेतन स्वरूप है सबका जानने वाला है अतः जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में रहने वाला होने से सत् स्वरूप है। सबका प्रकाशक होने से चेतन स्वरूप है, परमप्रिय होने से आनंद स्वरूप है इस सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा का कभी अभाव नहीं होता वही सारी सृष्टि का प्रकाशक है वही मैं, वह एवं तुम के रूप में जानने आ रहा है उसमें आना जाना नहीं है आत्मा का न कोई माता है न पिता है क्योंकि उससे न कोई पैदा होता है न वह किसी से पैदा हुआ है वही साक्षी रूप में सर्वत्र व्यापक है उसको जानो तथा वही सर्वाधिष्ठान एवं सर्वावभासक है तथा आनंद स्वरूप है।

–संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ 3ः जनवरी 2012

* * * * * *

षट् - सम्पत्ति

भगवान शंकराचार्य ने अपने साधनपंचक के उपदेश में कहा है – ''सज्जनों का संग करो, भगवान की दृढ़ भक्ति का आश्रय लो, शम – दमादि का भली भाँति संचय करो और कर्मों का शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक त्याग कर दो, सच्चे (परमार्थ जानने वाले) विद्वान के पास नित्य जाओ उनकी चरण पादुका को नमन करो, उनमें एकाक्षर ब्रह्म की जिज्ञासा करके वेदों के महावाक्यों का श्रवण करो।'' यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि महावाक्य किसे कहते हैं एवं उसका तात्पर्य क्या है?

वेदों में एक लाख श्लोक आते हैं उनमें अस्सी हजार श्लोक कर्मकाण्ड का निरूपण करते हैं जब मनुष्य निष्काम भाव से कर्मकाण्ड करता है जैसे – संध्या, पितृ तर्पण, देव पूजन, हवन ऋषियज्ञ (स्वाध्याय आदि) एवं मासिक यज्ञ जो आधुनिक काल में पूर्ण मासिक कथा हवन आदि के रूप में चलता है, शिवार्चन आदि वार्षिक कर्मकाण्ड आदि किये जाते हैं। इन सभी का समावेश कर्मकाण्ड में होता है। जब यह कर्मकाण्ड निष्काम भाव से किये जाते हैं तो यह अन्तःकरण शुद्धका हेतु होते हैं। कर्मकाण्ड में ही वह सब अनुष्ठान आदि जो किसी फल की इच्छा अथवा रोग निवाराणार्थ किये जाते हैं वह सभी इन अस्सी हजार मंत्रों के अतिरिक्त शास्त्रोक्त एवं तंत्रोक्त मंत्रों की भरमार है जो प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभाव, आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार चयन कर जीवन में यथासम्भव लाभ लेते हैं। इनमें वह अपना व्यवहारिक जीवन को चलाते रहते हैं और वह कुछ न कुछ अन्तःकरण शुद्धि के कारण बनते हैं।

शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति ही सद्विचार एवं सत्संग को पाकर भक्ति की ओर उन्मुख होता है।

वेदों में सोलह हजार मंत्र उपासना मार्गी है, उपासना में गुरू एवं इष्ट के प्रति समर्पण मुख्य होता है जब मनुष्य को सत्संग मिला है तब सद्विचार एवं सत्–असत् का विवेक जाग्रत होता है। विवेक का फल वैराग्य होता है, बिना विवेक के संसार से राग–द्वेष निकल ही नहीं सकता। जब मनुष्य के अंदर यह दृढ़ता आ जाती है कि संसार परमात्मा का ही स्वरूप है और परमात्मा ही सत्य है। संसार एक लम्बे समय तक चलने वाला स्वप्न ही है और इसमें मनुष्य केवल आगे की आशा में ही भटकता रहता है। जैसे – रेगिस्तान की रेत में सूर्य की किरणें पड़ने से वह दूर से पानी जैसी लगती है और वहाँ का हिरण उसके पास पानी की चाहत में जाता है। परन्तु वह पानी को नहीं पाता, और आगे पानी है यहाँ रेत है ऐसा उसे लगता है। प्यासा हिरण पानी के भ्रम में दौड़ लगाता रहता है तथा पानी का आभास आगे ही बढ़ाता जाता है। वहाँ पानी हो, तो वह उसे पा सके वहाँ तो मात्र पानी का भ्रम ही होता है। ठीक यही हाल संसार का है, मनुष्य सोचता है कि वह आगे सुखी होगा लेकिन वह स्थायी सुख की चाह में भटकता रहता है। वह नहीं जान पाता कि सदैव रहने वाला सुख

तो संसार में है ही नहीं। सुख तो केवल संतोष से ही मिलता है और संतोष आदमी को सत्–असत् के विवेक से प्राप्त होता है। जिसमें राग–द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं रहता। संतोष की की ही अंतिम परिणति संसार से वैराग्य में होती है।

विवेक का फल वैराग्य है और वैराग्य का फल षट्–सम्पत्ति शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रृद्धा एवं समाधान होता है। शम माने मन पर नियंत्रण, दम माने इन्द्रियो पर नियंत्रण, उपरति माने कर्मों की अधिकता से वैराग्य, तितिक्षा माने शरीर का अधिक से अधिक शारीरिक कष्ट सहन करने की क्षमता, श्रृद्धा माने वेद वाक्य एवं गुरू वाक्य पर श्रृद्धा एवं समाधान माने संशय रहित हो जाना।

षट् सम्पत्ति सम्पन्न व्यक्ति में ही मुमुक्षा जाग्रत होती है। मुमुक्षा का अर्थ है जन्म – मरण से मुक्त होने की इच्छा जैसे कि बार – बार संसार में आकर कर्म करना और उन कर्मों के फलों को भोगना, फिर नवीन कर्मों का होना इस चक्र से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है ? ऐसा विचार जिज्ञासु के मन में आने पर सद्गुरू की तलाश होती है और वह सद्गुरू की शरण ग्रहण करता है।

वेदों में ज्ञान काण्ड के कुल चार हजार मंत्र है उसमें भी चार सौ मंत्र मुख्य है जिनमें चालीसा श्रुतियां प्रमुख है। चालीस में भी चारों वेदों के चार महावाक्य महत्वपूर्ण है। इन महावाक्यों में जीव और ब्रह्म की एकता बतायी गई है। जब कर्म एवं उपासना के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण प्राप्त जिज्ञासु को सद्गुरू मिल जाते हैं। तब वह उसे बतलाते है कि तुम शरीर नहीं हो, तुम्हारा असली स्वरूप आत्मा है। वही मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का प्रकाशक है। उसी से ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ तथा पांचों विषय प्रकाशित हो रहे है। वह आकाश से भी सूक्ष्म, तुम्हारे हृदय में ही विराजमान है, वही तुम्हारी आत्मा है वह आत्मा ही ईश्वर है जो सारी सृष्टि का जानने वाला और प्रकाशक है वही सृष्टि को उत्पन्न करता है। सभी शरीरों में वही अशरीरी हो करके विराजमान है। वास्तव में वह निरूपाधिक चेतन है तथा उपाधि से वह माया का प्रकाशक होने से ईश्वर है उसी समाधि वैश्वानर आदि है। अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को न जानने के कारण उसी को हम जीव कहते हैं। वास्तव में आत्मा में कोई बंधन नहीं है, वह निरूपाधिक चेतन केवल प्रकाशक एवं दृष्टा है इसी को हम कूटस्थ एवं साक्षी नामों से जानते हैं उसके असली स्वरूप को न जानने से हम वासना के साथ, वासना के कारण संसार में भटक रहे हैं। उसको जानकर हम वासनाओं से मुक्त हो जाते हैं। वासनाओं से मुक्ति का नाम ही जीवन में ही जीवनमुक्ति है। मुक्ति का आनन्द जीते जी ही इसी जीवन में मिलता है इसीलिए महापुरूष इसे नकद का सौदा कहते हैं। शुभ कर्मों का फल स्वर्ग है जो कि उधार साहूकारी है एवं बुरे कर्मों का फल नर्क या भोग योनियों के रूप में मिलता है जो कि बुरे कर्मों का फल होता है, यही संसार है। वासनाओं से मुक्ति ही मुक्ति है।

–संकलन

बसंत पंचमी

पृष्ठ 10 : 10 फरवरी 2019

* * * * * *

पूजा

हिन्दू संस्कृति में मूर्ति पूजा का विशेष महत्व है। सभी लोग किसी न किसी रूप में मूर्ति पूजन करते हैं चाहे विष्णु के उपासक हों, चाहे शैव आदि देवी देवता के उपासक हों। यदि हम मूर्ति पूजा के रहस्य पर विचार करें तो भारतीय मनीषियों की गहरी सोच का पता चलता है।

शास्त्र का प्रमाण है कि नर्मदा नदी का प्रत्येक पत्थर शंकर और नेपाल की गंडकी नदी का प्रत्येक पत्थर शालिगराम है जिसकी पूजा विष्णु के रूप में की होती है। सिद्धांत यह है कि सृष्टि के कण–कण में ईश्वर का वास होता है।

'' ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्। ई.वा.उ. ''

जब ईश्वर सब में व्यापक है तो फिर उसकी पूजा किसी भी रूप में कर सकते हैं। चाहे वह मिट्टी हो, पत्थर हो या फिर कोई धातु हो फर्क नहीं पड़ता। सर्वसाधारण की श्रृद्धा को जोड़ने के लिए नर्मदा नदी के पोषण में शंकर का अध्यारोप कर लिया गया और जब हम पूजा करते हैं तब जो मंत्र बोला जाता है उसका भाव सर्वव्यापी चेतन की ही स्तुति होता है।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्नाभं सुरेशं।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं।
वन्दे विष्णु भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

शादी व्याह में गाय के गोबर से गणेश जी बनाकर उनकी पूजा करते हैं तथा सुपारी में भी गौरी गणेश इत्यादि की पूजा होती है। इसी प्रकार कलश पूजन आदि की जो पद्धति है उन सबमें भिन्न–भिन्न वस्तुओं में अध्यारोप के उदाहरण हैं किन्तु सभी पूजन में भाव सर्वव्यापी परमात्मा का ही होता है। मन की एकाग्रता के लिए भिन्न – भिन्न देवी देवताओं का पूजन भाँति–भाँति विधि से किया जाता है।

मन बुद्धि को स्वस्थ्य रखने के लिए गणेश सरस्वती की वन्दना, शाक्ति के लिए देवी माँ की वन्दना एवं धन के लिए लक्ष्मी कुबेर की वन्दना की जाती है। मनुष्य के जीवन में यह अलग–अलग अवसरों पर परिस्थितियों एवं आश्यकता अनुसार सम्पन्न की जाती है। उदाहरण स्वरूप ज्ञान के लिये गुरू की वन्दना की जाती है। इसी प्रकार से माता–पिता में भगवान के दर्शन सभी करते हैं। इन अध्यारोपों के द्वारा हम किसी भी रूप में पूजा करें वास्तव में पूजा एक ही तत्त्व की कर रहे होते हैं। वही तत्त्व सर्वत्र आत्मा के रूप में व्यापक है। भक्ति के द्वारा हम उसका पूजन, अर्चन, ध्यान आदि किसी भी रूप में कर सकते हैं।

ज्ञानी पुरूष उसका अनुभव अपने अन्दर ही करते हैं। ज्ञान के लिए श्रद्धा एवं विवेक की परम आवश्यकता होती है जो कि हमें गुरू कृपा से सत्संग द्वारा प्राप्त होती है।

–संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ 3: 01 फरवरी 2017

* * * * * *

" मै " ही जानने वाला

हमारे जीवन में प्रतिदिन सुषुप्ति एवं स्वप्न अवस्थाऐं आती रहती हैं और जागने पर हम उनको मिथ्या मान लेते हैं। यह प्रक्रियाऐं सभी के जीवन में देखी जाती हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति इन प्रक्रियाओं पर विचार ही नहीं करते कि ये जो स्वप्न निद्रावस्था में देखा गया, वह किसने देखा। इस सबको देखने वाला क्या यह जड़ शरीर था जो चार पाई पर पड़ा था या इसके अलावा भी कोई स्वप्न एवं सुषुप्ति का साक्षी है। जो हमारी जाग्रत अवस्था की क्रिया कलापों का साक्षी रहता है, क्या वही स्वप्न एवं सुषुप्ति का भी साक्षी है।

अगर हम इस पर विचार करें तो देखते हैं कि हमारे जीवन में जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाऐं आने–जाने वाली रहती हैं। किन्तु यह अवस्थाऐं ऐसी हैं जैसे कि एक मिट्टी का लोटा लेकर हम उसको गोलाकार आकृति दे दें उसके बाद फिर उसको चपटा करें तो चपटा किये जाने पर गोलाई नहीं रह जाती। अब चपटा मिटाकर लम्बी सी आकृति दे दें तो चपटी अथवा गोलाई वाली आकृति नहीं रह जाएगी, इन सब परिवर्तनों के होते हुए भी मिट्टी ज्यों की त्यों रहेगी। बिना मिट्टी के कोई भी आकृति का होना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं के साक्षी के रूप में ''मैं'' हमेशा रहता है। जब हम स्वप्न देखते हैं तब यह स्थूल शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है और उस अवस्था में एक नये दृश्य की रचना हो जाती है। जिसमें हमारा एक स्वप्न शरीर होता है जो स्वप्न के सारे दृश्य को देखता है तथा जाग्रत अवस्था की ही भाँति इस स्वप्न शरीर को सत्य समझता है और उसमें अपने को कर्ता–भोक्ता समझकर सुखी–दुखी होता रहता है।

निन्द्रा से जागने पर कहता है कि आज बहुत अच्छा अथवा बड़ा भयानक स्वप्न देखा किन्तु जाग्रत अवस्था में आ जाने से उस सबको झूठा समझ लेता है। जिसको हम स्वप्न कहते है वह हमारे जीवन में हम ही ने, जो अपनी वासनाओं के अनुसार कर्म किये, उन कर्मो के अनुभव ही स्वप्न बनकर प्रकट होते हैं। इसी प्रकार हमारी जाग्रत अवस्था के जो तीव्र संस्कार होते हैं वह इस स्थूल शरीर के छूटने पर अगले जन्म के कारण बन जाते हैं।

यह जन्म जाग्रत, स्वप्न अवस्थाओं की भाँति बदलने वाला है और जैसे मिट्टी की आकृतियों में मिट्टी के बिना कोई भी आकृति नहीं हो सकती, उसमें मिट्टी ही सत्य है उसका कभी अभाव नहीं है। इसी प्रकार हमारे जीवन में साक्षी ही सत्य है साक्षी का कभी अभाव नहीं होता। जैसे जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति अवस्थाऐं बदलती रहती हैं उसी प्रकार बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा बदलता रहता है। जवानी में बचपन नहीं रहता, न ही बचपन के स्वप्न ही रहते हैं। जवानी के निकलने पर बुढ़ापा आ जाता है, तो जो हम बचपन अथवा जवानी में रहे एवं वही बुढ़ापे में भी होते हैं, इन सभी अवस्थाओं का साक्षी ही सत्य है। यह अवस्थाऐं तो आने–जाने वाली हैं तथा कर्म एवं वासना के अनुसार शरीर की मृत्यु होने के पश्चात् अगला जन्म होता है। लेकिन यह सब जन्म मिथ्या ही है इनमें साक्षी ही सत्य है। वह साक्षी अद्वितीय एवं अविनाशी है, वही आत्मा है, वही ''मै'' हूँ।

–संकलन
गुरू पूर्णिमा
पृष्ठ 3 : 09 जुलाई 2017

* * * * * *

परम पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी
ग्रन्थ पढ़ते हुये
दिनांक 29.09.1996

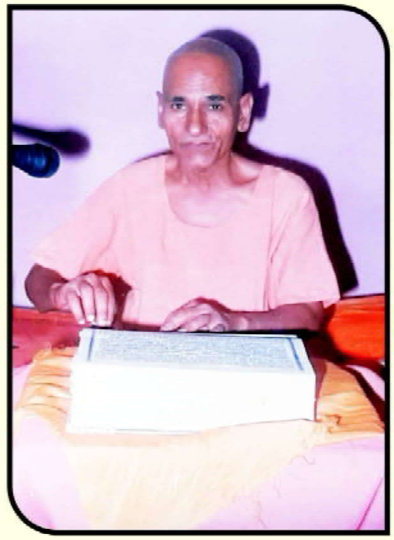

परम पूज्य स्वामी जी
एवं ब्रह्मचारी जी
प्रसाद ग्रहण
करते हुये
दिनांक 26.09.1996

ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर
श्री स्वामी वेदानन्द जी
एवं अन्य संतों
के साथ
स्वामी जी

परम पूज्य स्वामी शुकदेवानन्द जी उद्‌बोधन देते हुये मंचासीन

ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर स्वाामी वेदानन्द जी के साथ पूज्य स्वामी जी मंचासीन

सरस्वती संस्कार केन्द्र के कार्यक्रम में स्वामी जी

संस्कार

सृष्टि में चौरासी लाख योनियों का शास्त्रों में उल्लेख आया है उनमें मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना है। मनुष्य को परमात्मा ने सर्वाधिक बुद्धि प्रदान की है। संसार में हम जो कुछ भी व्यवहार करते हैं कर्मेन्द्रियों से ही करते हैं। कर्मेन्द्रियों को शक्ति प्राणों से मिलती है एवं ज्ञान हमें ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता है। जब मन ज्ञानेन्द्रिय सहित कर्मेन्द्रिय के साथ होता है तब हम कार्य करते हैं। संसार में जो कुछ भी सृजन होता है वह सभी ज्ञान और कर्म का समुच्चय है।

ज्ञानेन्द्रियाँ पांच प्रकार की होती है, यह अपने–अपने विषयों का ज्ञान रखती हैं और विषय भी पांच प्रकार के ही होते हैं। कानों से शब्द का बोध होता है, नेत्रों से रूप का, त्वचा से स्पर्श का, नासिका से गंध का एवं स्वाद का बोध जिह्वा से होता है। जिह्वा को रसना भी कहते हैं यह कर्मेन्द्रिय भी है एवं ज्ञानेन्द्रिय भी है वाणी के कारण यह कर्मेन्द्रिय कहलाती है। इन पांचों विषयों में संसारी जीव अटका रहता है। यहाँ तक कि एक–एक विषय में एक जीव अपने प्राण भी दे देता है जैसे हिरण को शब्द का आकर्षण बहुत होता है और बहेलिया वीणा बजाकर उसे पकड़ या मार डालता है, पतंगे रूप पर प्राण न्यौछावर कर देते हैं, हाथी स्पर्श के आकर्षण में मारा या पकड़ लिया जाता है, मछली स्वाद में मारी जाती है एवं भौरा कमल की गंध में फंसकर अपने प्राण खो देता है। अलग–अलग जीव अलग–अलग विषय में फंसा रहता है। फिर भी परमात्मा ने मनुष्य को सबसे अधिक बुद्धि प्रदान की है। इस बुद्धि के कारण ही मनुष्य विषयों में फंसता है एवं विषयों से सावधान रहते हुए संसार में अपना व्यवहार करता रहता है।

यह सृष्टि पंचभूतात्मक है और इस सृष्टि का निर्माण भी इन्ही पांच भूतों से हुआ है। सारा व्यवहार शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध में ही हो रहा है। मन जिस ज्ञानेन्द्रिय के साथ होता है, बुद्धि भी उसी के साथ हो जाती है। हमारी बुद्धि सावधान रहते हुए भौतिक एवं आध्यात्मिक अभ्योदय की ओर अग्रसर रहे, इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में सबसे उत्कृष्ट कहा है ऋषि मुनियों ने हमारे जीवन में सोलह संस्कारों को जोड़ा है, इन्हीं संस्कारों के द्वारा मनुष्य के व्यक्त्वि का निर्माण होता है। यह संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होते है एवं गर्भावस्था में माता–पिता का जैसा वातावरण होता है उसी का पूरा का पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। जैसे कि हिरण्य कश्यप की पत्नि कयाधू गर्भावस्था के समय नारद ऋषि के आश्रम में रहीं वहाँ ऋषि मुनियों के संग सत्संग करती रहीं इसीलिए तो उनकी गर्भस्थ संतान प्रहलाद का जीवन एक ज्ञानी भक्त के रूप में संसार के समक्ष उभरा, दूसरा उदाहरण अभिमन्यु का है जिसने चक्रव्यूह के भेदन को अपने माता–पिता की चर्चा से, गर्भ में ही सीख लिया था किन्तु अन्तिम द्वार भेदन की चर्चा के समय उनकी माँ निद्रा से ग्रसित हो गई थी, जिसका परिणाम अभिमन्यु को चक्रव्यूह से न निकल सकने का कारण बना। इसलिए यह परमावश्यक है कि गर्भवती स्त्रियों का खानपान एवं वातावरण शुद्ध सात्विक ही हो। गर्भाधान संस्कार के बाद पंसवन, नालोच्छेदन, जातक कर्म आदि आते हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण संस्कार यज्ञोपवीत होता है। जिसके बाद बालक ब्रह्मचारी अवस्था में विद्या अध्ययन धारण करता है और उसे संस्कार के द्वारा संध्यावंदन, देवपूजन आदि से देवऋण के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है। माता–पिता, गुरू की सेवा द्वारा अपने पूर्वजों, गुरूजनों की सेवा के प्रति उत्तरदायी और जागरूक बनाया जाता है। यह सब संस्कार मनुष्य की बुद्धि को परमार्जित करते है और ऐसा संस्कारित व्यक्ति देश, समाज एवं अपने परिवार के प्रति सदैव समर्पित रहता है।

उपनिषद् में कहा है इन्द्रिय ही घोड़े हैं क्योंकि संसार में सारा का सारा व्यवहार इन्हीं पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त इन चौदह से ही हो रहा है। मन इनमें प्रमुख है इसीलिए मन को लगाम तथा बुद्धि को असवार कहा गया है। मन की लगाम बुद्धि के हाथ में रहे और बुद्धि परमात्मा से जुड़ी हो, ऐसा तभी सम्भव है जब हम स्वयं जागरूक रहते हुए अपने बच्चों के संस्कार एवं वातावरण पर ध्यान रखते हुए, उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते रहें।

–संकलन

गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ 9 : 09 जुलाई 2017

* * * * * *

परमात्मा का स्वरूप

ईश्वर सर्वव्यापी है, फिर भी हम अज्ञान के कारण उसको जाने बिना दुःखी रहते हैं। यदि हम उसे पहचान लें तो हमारे दुःखों का समूल अन्त हो जाता है। विचार करने की बात है कि वह अक्षर स्वरूप परमात्मा जब सर्वत्र है, हम यह भी जानते हैं कि वह सदैव है उसका कभी अभाव नहीं होता है तथा जो कुछ भी भूतकाल में हो चुका है एवं वर्तमान में है एवं भविष्य मे होगा वह सब उसी अक्षर पुरूष परमात्मा की महिमा का विलास है। यदि हम विचार करें कि जब सब कुछ परमात्मा ही है तब हम उससे बाहर तो नहीं हैं एवं वह भी हमसें बाहर नहीं है। तब फिर हमारें अन्दर किस रूप में है ?

हमारे ऋषि मुनियों ने उपनिषदों में इसी रीति से विचार किया है। उन्होंने सीधे परमात्मा के स्वरूप में मेढक की भाँति छलाग लगाने को कहा है और उनके अनुभव में महावाक्य आया – ''अयमात्मा ब्रह्म'' माण्डूक उपनिषद् जाग्रत अवस्था में हमारी आत्मा इन्द्रियों के माध्यम से संसार को जानती है दूसरे शब्दों में अपनी ही सृष्टि का आनंद ले रही है।

इस अवस्था में हमारी चेतना बर्हिमुख होती है। इसीलिए प्रकृति ने मन सहित छहो इन्द्रियाँ बर्हिमुख बनायी। जाग्रत में अंतरिक्ष हमारा सिंर है, पृथ्वी हमारे पैर है, दिशायें हमारी भुजायें हैं, आकाश हमारा उदर है, सूर्य और चन्द्र हमारे नेत्र है, जल हमारा लहू (रक्त) व मूत्र है, वायु हमारी प्राणवायु है। इस इस प्रकार से सप्ताङ्ग होकर हम उन्नीस मुखों से इस संसार का भोग करते हैं। उन्नीस मुखों में से पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच विषय एवं मन बुद्धि चित्त, अहंकार, अन्तःकरण, चतुष्टय शामिल है।

इस तरह से हम जाग्रत अवस्था में स्थूल जगत का भोग करते हैं और वैश्वानर कहलाते हैं।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। श्रीमद्भगवद् गीता 15:14

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गीता में श्रीकृष्ण के रूप में परमतत्त्व ही बोल रहा है। स्वप्नावस्था में हम हू–ब–हू जाग्रत की भाँति एक नया संसार खड़ा कर लेते हैं। जिसमें जाग्रत की भाँति ही देशकाल एवं वस्तुओं का अनुभव–सा होता है और हम जाग्रत के संसार से पूरी तरह अलग होकर जाग्रत की भाँति ही स्वप्न संसार का स्वप्नपुरूष होकर स्वप्न संसार को भोगते हैं, तथा हम तेजस कहलाते हैं। जब हम गहन सुषुप्ति में आते हैं तब जाग्रत अवस्था की भाँति मन में न कोई कल्पना कर रहे होते हैं, न ही स्वप्न की भाँति कोई दृश्य देख रहे होते हैं तथा हमारी वासनायें बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। इस अवस्था का नाम प्राज्ञ है। यह प्राज्ञ ही ईश्वर है तथा यही सर्वज्ञ है, यही हमारा अन्तर्यामी नारायण है। इसी को भक्तों ने एवं योगियों ने पुरूषोत्तम आदि अनेक नामों से जाना है।

हमारे जीवन में यह तीन अवस्थायें ही जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति के रूप में देखने में आती है। वास्तव में विचार करके देखें तो हम इन तीनों के प्रकाशक मात्र हैं। जैसे सूर्य अपनी गति से पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और उसे यह मतलब नहीं है कि कहाँ दिन है कहाँ रात्रि है, किसको गर्मी सुखदायी है या किसको दुखदायी है, किसको जीवन मिल रहा है या किसको मृत्यु मिल रही है वह सूर्य तो अकर्ता, उपभोक्ता होकर अपनी गति से चल रहा है। लेकिन हम जानते है कि सारी सृष्टि का वही एक प्रकाशक है।

''मैं'' ही सत् है तथा सारी सृष्टि का प्रकाशक आत्मचेतन ही है। आत्मा के रूप में ''त्व'' पद ही ''तत्'' पद है, ''तत्'' पद के रूप में ''मैं'' ब्रह्मा कहलाता है तथा ''त्वं'' पद से आत्मा कहलाता है। ''तत्'' पद और ''त्व'' पद से घटाकाश और महाकाश की भाँति अलग–अलग नहीं है। इसी प्रकार से एक ही आत्मा निराकार से सारी सृष्टि का प्रकाशक एवं नियंता है वही विश्व तेजस एवं प्राज्ञ उपाधियों से विभूषित है। वह स्वरूप में अकर्ता, अभोक्ता, तत्त्व है समस्त उपाधियाँ इसी में कल्पित हैं यही हमारा स्वरूप है।

यदि हम गुरूदेव के सानिध्य में जिज्ञासु होकर विचार करें कि जाग्रत सत्य है या स्वप्न सत्य है? तब हम इस निर्णय पर पहुँचेगें कि न जाग्रत सत्य है और न ही स्वप्न सत्य है। जैसे स्वप्न, जाग्रत में मिथ्या हो जाता है। स्वप्न का देखना तो सत्य था, किन्तु जो कुछ भी देखा वह मिथ्या है ऐसा जाग्रत में अनुभव हो जाता है।

इसी प्रकार हम अपने ''मैं'' को जब तुरीयतत्त्व के रूप में अनुभव करेंगे तो हमारा यह संसार जिस पर हमने मैं – मेरे का अभिमान कर रखा है वह सब रेगिस्तान में रेत पर पड़ती हुई सूर्य की किरणों को देखने से जलाभास की भाँति मिथ्या हो जाता हैं जो जल देखने में तो आता है किन्तु पीने के लिए नहीं मिल पाता और मूर्ख हिरण जल की तलाश में दौड़–दौड़ कर प्राण गवां देता है।

इसी भाँति हम इस संसार में धन–परिवार से सुख–शान्ति चाहते हैं लेकिन शान्ति स्वरूप भी जब तक हम अपने ''मै'' को नहीं पहचानेंगे तब तक शान्ति हमें मृगमारीचिका ही रहेगी।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ सं0 8, 27 जुलाई 2018

* * * * * *

अज्ञान

'' योगः कर्मषु कौषलम् ''

हम संसार में रहें लेकिन संसार हममें न प्रविष्ट हो जाए। नाव जल में ही चलेगी लेकिन नाविक की कुशलता यह कहलाती है कि नाव में जल न पहुँचे। परमात्मा को जानने के लिए संसार आवश्यक है परन्तु ध्यान रखना होगा कि संसार के दोष राग – द्वेष, काम – क्रोध, लोभ – मोह आदि से हम चिपक न जायें। वह माया जो केवल प्रतीति मात्र है, वह है नहीं। श्री मद् भागवत में कहा है –

ऋतेअर्थ यत् प्रतीयते, न प्रतीयते च आत्मनि।

''सत् आत्मा को ढक करके जो है नहीं वह दिखाए जैसे– राहु – केतु आकाश में दिखने पर भी हैं नहीं। ''

माया प्रतीत मात्र है। माया के लिए आचार्यों ने कहा है –

'' रज्जुम् भुजंगम् इव प्रतिभासतम् ''

जैसे रस्सी में सांप का भ्रम होता है, ऐसे ही यह माया भ्रम है। लेकिन यह भ्रम बिना किसी आधार के नहीं होता। अगर हम विचार करें तो यह आधार हममें ही अपने स्वरूप के अज्ञान से है। यहाँ पर स्थिति यह होती है कि हम कहीं सर्प को देखते हैं और हमारे अन्दर सर्प से भय प्रविष्ट कर जाता है। वही भय रस्सी में आरोपित हो जाता है, यह आरोपित भय बिना प्रकाश के नहीं निकलता। यह आरोपित सर्प ही माया है, माया भी ब्रह्म की तरह ही अनादि है। अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही वह निवृत हो जाती है, इसीलिए माया को अनादि होते हुए भी सान्त कहा है। यह अपने स्वरूप में स्थित होने पर जीव भाव समाप्त हो जाता है। अपने को ब्रह्म जानकर भगवान परशुराम ने क्षत्रियों का संहार कर डाला और पुनः क्षत्रिय राम को पहचानकर अपना धनुष भी उन्हीं को सम्भला दिया। इसके उपरांत स्वयं निवृत्त होकर यह भूखण्ड भी छोड़कर पुनः वापिस नहीं आए। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से महाभारत करा डाला और अर्जुन को पाप स्पर्श भी नहीं कर पाया। इस प्रकार से जीवन में हम अपने स्वरूप का ज्ञान कर और स्वरूप में स्थित होकर संसार के समस्त कर्म करते रहें, परन्तु उनमें चिपकें नहीं। पुण्य – पाप, सुख – दुःख, मान – अपमान, राग – द्वेष और हानि – लाभ आदि द्वन्द्वों से मुक्त रहते हुए संसार के सब कर्म करते हुए गुरू शरणागति लेकर, गुरू को अपना नाविक जानें गुरू की शरणागति ही नाव है। वह हमारे कर्णाधार गुरू महाराज ज्ञान की नौका से हमें जीवन बंधन से पार करा देते हैं। ध्यान रहे हमें पार कराने वाला यह गुरू – ज्ञान ही है अर्थात् गुरू – ज्ञान के द्वारा अपने स्वरूप में स्थित होते हैं, ज्ञान बिना गुरू शरणागति के नहीं होता।

'' अयम् आत्मा ब्रह्म '' का बोध होते ही यह संसार मिथ्या हो जाता है एवं ज्ञान से कर्ता भाव भी निवृत्त हो जाता है। बिना आधार के जैसे सांप की प्रतीति नहीं हो सकती, इसी प्रकार आधार अपना स्वरूप ही है। स्वरूप का अज्ञान ही माया है। अज्ञान की निवृत्ति ही ज्ञान है। गुरू द्वारा उनके आशीर्वाद से अपने स्वरूप को जान लेना ही अन्वय व्यतिरेक है। अन्वय व्यतिरेक के द्वारा माया की निवृत्ति ही ज्ञान है।

–संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी

पृष्ठ सं0 6 30 जनवरी 2020

मुक्ति

साधक जिज्ञासु होता है वह विचार करता है कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या धन कमाना, परिवार बढ़ाना, फिर बैल अथवा गधे घोड़े की तरह जुतकर और बूढ़े होने पर जैसे बैल की घास चरने की शक्ति खत्म हो जाती है तो उसे छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार हम भी एक दिन बूढ़े होकर बैठ जाएं जब तक शरीर में शक्ति है तब तक परिवार की सेवा करते–करते ढेर सारी अधूरी कामनाओं को लेकर अपना शरीरांत की राह देखें तब हममें और पशुओं में क्या अंतर होगा।

जब ऐसे विचार हमारे अंदर उठते हैं तब हमें उन महापुरूषों पर श्रद्धा होती है जिन्होंने अपने गुरूओं के सानिध्य में बैठकर स्वाध्याय एवं सत्संग से अपने मन को संयम, नियम में रखकर अपने को शास्त्रानुसार बनाया है। यह श्रद्धा ही गुरू भक्ति की जननी है साधक को जब श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू मिलते हैं तब वह सद्गुरू उसके जीवन में मार्गदर्शक होकर स्वाध्याय एवं सत्संग की ओर प्रेरित करते हैं सत्संग का अर्थ है सत् का संग। सत् ही कीट पतंग से लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबकी आत्मा है। वह हमसे कभी अलग नहीं होता। सारी सृष्टि उसी में प्रतीत हो रही है। उसी से सारी सृष्टि बिना हुए ही प्रतीत हो रही है सारी सृष्टि में परमात्मा वस्त्र में सूत की तरह पिरोया हुआ है उदाहरण के तौर पर कोई लड़की सूत से किसी चादर पर कढ़ाई से नाना प्रकार के चित्रों की रचना करे तो उसकी सारी चित्रकला में सूत ही सूत है। चित्रकारी केवल प्रतीति है इसी प्रकार यह सृष्टि सत् रूपी सूत में प्रतीति मात्र है। सारी सृष्टि में सत् ही नाना रूपों में प्रतीत हो रहा है। वही मन बुद्धि में चेतन बनकर सबका प्रकाशक है।

हम संसार में विषयों में आनन्द को ढूंढते हैं जबकि आनन्द स्वरूप हम स्वयं है हमारा ही नाम सच्चिदानंद है इसी सच्चिदानंद को हम अपने में '' मैं '' कहते हैं सामने वाले में उसी सच्चिदानन्द को ''तुम '' कहते हैं और जो हमसे दूर है उसे हम वह (तत् कहकर) पुकारते हैं इसीलिए सद्गुरू अपने शिष्य को बताते हैं कि वह ब्रह्म तू ही है '' तत्त्व मसि '' जब साधक इस रहस्य को गुरूमुख से सुनता है तो उसका अज्ञानरूपी मोतियाबिन्द का जाला कट जाता है और वह अपने मनुष्य जीवन को गुरू कृपा से धन्य जानता है यही गुरू कृपा है इसी का नाम मुक्ति है जो गुरू की भक्ति से प्राप्त होती है।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ सं0 3ः जुलाई 2011

* * * * * *

महान बनने का आधार जाग्रति

उन्नतिशील जीवन जीने के लिए यह परम आवश्यक है कि हम अपने दैनिक जीवन में जाग्रत रहे। जाग्रति का अर्थ है सतर्कता। यह जाग्रति छोटी–छोटी बातों से लेकर राष्ट्रीय चिन्तन तक हमारे जीवन को प्रभावित करती है। व्यक्तिगत जीवन में समता एवं राष्ट्र के प्रति जागरूकता निरालस्यता एवं कर्मठता से ही आती है। जब तक हमारे व्यक्तिगत जीवन में शास्त्र एवं महापुरूषों के प्रति निष्ठा नहीं होती तब तक महापुरूषों के कहे हुए वचन हमारे हृदय में प्रकाशित नहीं होते। प्रस्तुत पत्रिका के द्वारा हम प्रयासरत है कि हमारा समाज एवं हमारी युवा पीढ़ी सुसंस्कारित हो। वह उपनिषद् गीता एवं श्रीमदभागवत के बताये हुए ज्ञान को अपने जीवन में उतारे। हमारा उपनिषदीय ज्ञान मनुष्य को मत मजहब एवं वर्णभेद से ऊपर उठकर तत्त्व का उपदेश करता है। हमारा स्वरूप सच्चिदानन्द है हम शरीर नहीं है। शरीर के जाने वाले ज्ञान स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा है। सारी सृष्टि उस एक ही तत्त्व में प्रतीत हो रही है जैसे एक माला के नाना वृक्षों के पुष्प पिरोये रहते हैं। बगीचे में हम देखते है कि कठहल के पेड़ एवं आम के पेड़ दोनों में एक सा खाद पानी मिल रहा है। तथा दोनों एक ही मिट्टी में समान भाव से बढ़ रहे हैं। केवल बीज अलग–अलग हैं बीज के अनुसार फल भी अलग–अलग है लेकिन दोनों पेड़ों में पंचभूत समान भाव से है। बीज में अलग–अलग वासना छिपी होने के कारण अलग–अलग फल उनका स्वाद एवं उपयोग अलग–अलग है। सारी सृष्टि का बीज यही भाव या वासना है। इस वासना का चक्र कभी टूटता नहीं है मनुष्य जीवन ही वासना को पलटने के लिए जंक्शन है जो केवल अपने को सच्चिदानन्द रूप में पहचानकर एवं संसार को केवल माया का खेल समझकर अपने को वासना रहित बनाकर तथा विलासी जीवन से मुक्त रहकर सम संतोष एवं सद्विचार का पोषण करके अपने को सादा जीवन एवं उच्च विचारों से ओत–प्रोत किया जा सकता है। यह जीवन बिना मन सहित इन्द्रियों एवं कामनाओं अथवा वासनाओं पर नियंत्रण के बगैर नहीं आ सकता। मन के नियन्त्रण का नाम सम है। इन्द्रियों के नियंत्रण का नाम दम है। कर्मों के नियंत्रण का नाम उपरति है। शरीर को हर परिस्थिति में रहने के लिए सक्षम बनाने का नाम तितिक्षा है। गुरू एवं शास्त्र पर श्रद्धा को ही श्रद्धा कहते हैं। केवल तत्त्व ज्ञान पर ही निष्ठा का नाम समाधान है। इसी का नाम षट् सम्पत्ति है। (धन) पैसा अच्छा सेवक तो है पर मित्र नहीं। ऐसा जानकर महापुरूषों की संगति से हम सद्पुरूषों के अनुसार अपने जीवन को ढाले। यही शरीर के उठकर अपने स्वरूप में जागनी है जब तक हम तत्त्व में अपने स्वरूप में जाग्रत नहीं होते तब तक महान भी नहीं बन सकते।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ सं0 3: जुलाई 2009

* * * * * *

ज्ञानी पुरूष का व्यवहार

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः।
वीत राग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।

उपनिषद् कहता है मनुष्य जीवन में इन्द्रियाँ घोड़े हैं, शरीर रथ है। इन्द्रियों का संचालक मन ही इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगाम है। बुद्धि इस शरीर का संचालक या ड्राइवर है, बुद्धि में बिना तत्त्व ज्ञान के धैर्य अथवा संतोष स्थायी रूप से नहीं रह पाता है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवत गीता में ज्ञानी महापुरूषों की रहनी बताते हुए कहा है। ''दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः'' अर्थात जो दुःखों में विचलित न हो साधारण व्यक्ति मामूली से उतार चढ़ाव में तनाव ग्रस्त हो जाता है जबकि ज्ञानी महापुरूष के जीवन में बड़ी से बड़ी घटना उसको विचलित नहीं कर पाती। उदाहरण के तौर पर भगवान श्री राम को राजगढ़ गद्दी मिलने के समय ठीक उसी मुहूर्त में वनवास मिला लेकिन उनके चेहरे पर सिकुड़न तक नहीं आयी। इसी प्रकार से धैर्यवान पुरूष को बड़े से बड़े दुःख आने पर भी अपने को विचलित नहीं करना चाहिए।

''सुखेषु विगत स्पृहः'' संसारी लोग जिसे सुख कहते हैं समझदार अथवा ज्ञानी महापुरूष कभी किसी भौतिक सुख से बँधता नहीं है। ''वीतरागभयक्रोध'' वह हमेशा संसार के विषय भोगों से निस्पृहः अथवा उदासीन रहकर सभी विषयों से तटस्थ रहते हुए उनका यथा समय उपयोग करते हुए उनका गुलाम नहीं बनता है। वे उसके जीवन में आते तो हैं लेकिन इस प्रकार जैसे कि अफसर के दफ्तर में चपरासी आकर, अपना काम करके चला जाता है। ऐसे ही ज्ञानी महापुरूष के जीवन में विषय भोग अथवा राग, काम क्रोध आदि विकार आते हैं। लेकिन ज्ञानी महापुरूष उनके वश में न होकर अपने वश में रखता है। विकार उसके वश में रहकर हथियार का काम करते हैं। ज्ञानी महापुरूष जीवन में शोक, मोह एवं भय से मुक्त रहते हैं। वे जानते है कि संसार में हम न कुछ लेकर आए थे न कुछ लेकर जायेंगे। यहाँ हमेशा रहना नहीं, यहाँ से कुछ लेकर जाना नहीं और लौटकर फिर आना नहीं। यहाँ जब आए थे तब निर्धन, यहाँ से जब जाऐंगे तब भी निर्धन फिर हमारा क्या छूट रहा है। जिसका हम शोक करें। हमारा यहाँ पर क्या है जिसका हम मोह करें हम तो सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हैं। जो न कभी मरता है, वह न कभी किसी से पैदा हुआ है। वही हमारा अजर–अमर अमृत स्वरूप ''मै'' है, इसीलिए हम भयमुक्त है।

संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ सं0 27, 31 जनवरी 2009

* * * * * *

गुरूमुखीय जीवन

चार प्रकार के मनुष्य संसार में होते हैं। पामर, विषयी, जिज्ञासु, व सिद्ध अथवा ज्ञानी। पामर धर्म अधर्म का विचार न करने वाले इन्द्रीय जीवी पशु पक्षियों की भाँति केवल प्रकृति की प्रेरणा के अनुसार शरीर का पोषण मात्र करते हैं। उनका जीवन मनुष्यता की दृष्टि से पशु जीवन है। उनकी अपेक्षा विषयी विचारशील होता है वह संसार में सुख के लिए धर्माचरण करता है उसके जीवन का लक्ष्य स्वयं सुखी रहना तथा दूसरों को भी सुखी देखना होता है इनके अतिरिक्त जिज्ञासु अथवा विचारशील पुरूष गुरू की शरणागति ग्रहणकर गुरू के बताये मार्ग पर चलकर तत्त्व का विचार करते हैं उनके अन्दर जीव क्या है इसके बार बार जनमें और मरने का कारण क्या है। ईश्वर क्या है वह कैसे कृपा करता है मैं कौन हूँ बार–बार जनम मरण जैसे असहनीय दुःखों से क्या छुटकारा पाया जा सकता है और कैसे अपने '' मैं '' के रूप में उस परम तत्त्व को पहचानकर कण–कण में उसी तत्त्व का वास देखकर सारी सृष्टि को प्रभुमय जानकर सदा–सदा के लिए सुखी जैसे समस्त नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना नाम रूप खोकर महासागर रूप हो जाती हैं इसी प्रकार जिज्ञासु अपने मैं को ब्रह्म रूप जानकर मुक्त हो जाता है मुक्त पुरूष का नाम ही सिद्ध महापुरूष है वेदान्त विद्या संसार में रजोगुण द्वारा उत्पन्न राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि वृत्तियों से प्रेरित होकर संसार में केवल धन परिवार और विषयों में सुख ढूंढ रहे हैं उनका मार्गदर्शन कर यह बताना है कि आप अपार ज्ञान सम्पदा के धनी है सुख स्वरूप आप स्वयं है आप अपने को पहचाने आप सत स्वरूप हैं।

''आत्मा त्वम् गिरजामति सहचरा प्राणः शरीरम् ग्रहम्''

वास्तव में आपके शरीर रूपी रथ में इन्द्रियाँ घोड़े हैं मन लगाम है बुद्धि सारथी है एवं बुद्धि के भी पीछे जिसकी चेतना से बुद्धि चेतन बनकर निश्चय करती है जो बुद्धि का प्रकाशक है वह आत्मा साक्षी मात्र आपका स्वरूप है जब आप बुद्धि में बैठकर मन बुद्धि एवं इन्द्रियों के गुलाम न होकर द्रष्टा होते हैं उस समय आप सर्वज्ञ है आपका दृष्टिकोण व्यापक एवं काम, क्रोध, लोभ आदि विषयों से प्रेरित न होकर गुरू एवं शास्त्रों के अनुसार होता है। तब आप गुरूमुख होकर वासना रहित आनन्दित जीवन व्यतीत करते हैं।

''विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्च चरित निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्त कालेऽपि ब्रह्मनिर्वाण मृच्छति।।''

–संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी, पृष्ठ सं0 03 : वर्ष 2008

जीवन का लक्ष्य

समस्त शास्त्रों का लक्ष्य मनुष्य का जीवन आनन्दमय बनाने का है प्रत्येक मनुष्य की हार्दिक चाह शान्ति की है मनुष्य को शान्ति केवल समस्त वासनाओं की निवृत्ति से ही मिलती है। वासनाओं का शरीर में रहना स्वाभविक है शरीर में वाणी, नेत्र, नासिका, श्रृवणेन्द्रिय आदि इन्द्रियों में इनके देवताओं का वास है। ये देवता इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से अपना–अपना आहार गृहण करते हैं। अतः जब तक शरीर रहता है तब तक शरीर के धर्म भी रहते है। अतः मनुष्य को चाहिए कि सत्संग स्वाध्याय के माध्यम से अपने जीवन में सम, दम, सद्विचार, धैर्य, धारणा का विकास करें और मन के द्वारा जिसका हृदय ही वास स्थान है इन्द्रियों पर नियंत्रण करें। शरीर में इन्द्रियों को गौ कहा गया है। गौ माने आहार के लिए सदैव बर्हिमुख रहने वाली। यह इन्द्रियाँ शरीर रूपी गाड़ी के घोड़े कहे जाते हैं। मन को लगाम कहा है बुद्धि को सारथी जानना चाहिए बुद्धि जब मन रूपी लगाम से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखती है तब जीव सम दम आदि से सम्पन्न होता है हम अपने जीवन में जब बुद्धि से विचार कर बुद्धि को परमात्म तत्त्व में लगाते हैं यानि अपने जीवन रथ की बागडोर जो बुद्धि के हाथ में है उसमें परमात्मा का वास देखते हैं अर्थात् अपने जीवन रथ की बागडोर बृद्धि में विराजमान परमात्मा को सौंप देते है। यह परमात्मा ही हमारे जीवन रथ का संचालक बन जाता है तब हम अपनी इन चंचल इन्द्रियों को वश में रखते हुये समस्त कर्मों को परमात्मा के द्वारा परमात्मा के लिए ही होते हुये देखते हैं। अपने को अकर्ता, अभोक्ता, केवल द्रष्टा मात्र अनुभव करते हैं और सम, संतोष, सद्विचार सतसंग की कृपा से जीव और ब्रह्म की एकता रूपी महावाक्य गुरू के द्वारा श्रवण कर अपने को केल ज्ञान स्वरूप साक्षी मात्र अनुभूति करते हैं। अनुभूति के फलस्वरूप संसार के सब व्यवहारों को करते हुये संसार में रहते हुये जीवन मुक्ति का आनन्द लेते हैं। जो वेदों के द्वारा बताए हुए इस सद्मार्ग पर नहीं चलता है उसके लिए यह संसार दुःख रूप है और वह धर्मा–धर्म, पुण्या–पुण्य आदि के द्वारा सुख–दुख, स्वर्ग–नरक, रूपी जंगल में गोते लगाता रहता है। इस संसार को पार करने के लिए एक मात्र यही ज्ञान रूपी नौका है जिसे उस परमतत्त्व ने नारायण रूप में अवतरित होकर के हम संसार वासियों को प्रदान की है मनुष्य शरीर को पा करके हमें यह तत्त्व ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए इसी का नाम विद्या है यही ज्ञान है इसको पाकर के फिर संसार में आवागमन नहीं होता है।

–संकलन
पत्रिका बसंत पचंमी
पृष्ठ सं0 3 जुलाई 2010

* * * * * *

परम शान्ति

सुख को सभी चाहते हैं और ऐसा सुख चाहते हैं जो सर्वत्र हो और सदैव भी हो तथा सबमें हो। उपनिषदीय भाषा में यदि कहें तो सबकी चाह ऐसे सुख की है। जो देशकाल वस्तु से अपरिछिन्न हो ऐसा सुख केवल आत्म ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है अपने असली 'मैं' को पहचानकर यानि आत्मा ही मैं है। व्यवहार में हम शरीर को मैं कहते हैं यह शरीर देश विशेष में होने के कारण हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई है, प्रान्त विशेष के कारण पंजाबी, बंगाली, मराठी हैं। वर्ण के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि हैं। पर वास्तव में वह मनुष्य है। विचार दृष्टि से देखें तो जैसे पशु के शरीर में बुद्धि के द्वारा जीव पेट भरने एवं शरीर की रक्षा में लगा रहता है इसी प्रकार यदि मनुष्य केवल संसार में इन्द्रिय की तृप्ति एवं कामना की पूर्ति में लगा रहता है तो वह अन्य जीवों के समान ही है मनुष्य की मनुष्यता केवल उसके विवेक से ही है। मनुष्य विवेक से सारी सृष्टि में भिन्नता को देखते हुए भी सबमें एक चेतना के दर्शन करता हुआ वह अनुभव करता है कि चेतन तत्त्व ही सबके अन्दर मौजूद है जो हमारे शरीर में हमेशा मौजूद रहता है। जो हमारी बुद्धि को प्रकाशित करता है वही तत्त्व मन के रूप में भी काम करता है तथा वही तत्त्व नेत्र में बैठकर संसार को देख रहा है वही तत्त्व जिव्हा से स्वाद ले रहा है और वही तत्त्व वाणी से बोल रहा है। यानि हृदय में वह मन बुद्धि चित्त, अहंकार रूप में प्रकट है। वही पांचों ज्ञानेन्द्रियों के रूप में तथा वही कर्मेन्द्रिय बनकर कर्म को कर रहा है। वायु के रूप में प्राण है तथा अग्नि के रूप में तेजस है यदि हृदय में जठराग्नि बना है समुद्र में बड़वानल तथा जंगल में दावानल के रूप में प्रकट है। आकाश भी वही है। पृथ्वी जल आदि पंचभूत भी वही है इस प्रकार जब मनुष्य गुरूओं के मार्ग दर्शन में जिज्ञासु बनकर विचार करता है, तो वह अपने को मनुष्य पशुपक्षी ये सारी की सारी सृष्टि में व्यापक देखता है और वह 'मैं' को केवल उपाधि के रूप में ही देखता है मनुष्य पशुपक्षी ये सारी की सारी उस चेतन की ही उपाधियाँ है वह चेतन ही नाना रूपों में प्रतीत हो रहा है। जैसे समुद्र में बड़ी लहरें बन रही और मिट रही हैं। वह सब समुद्र ही है। इस प्रकार वही एक चेतन तत्त्व हमारी आत्मा है जो सर्वत्र है सारी कल्पनायें उसी में है उसी के संकल्प से है वह आत्म तत्त्व ही ईश्वर है वही निर्विकार अक्षर अजन्मा अविनाशी तत्त्व है, वही शरीर के अंदर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में सदैव जाग्रत है। सुषुप्ति में वही आनन्द का अनुभव करता है वही सो के उठने के बाद कहता हे कि हमें बहुत अच्छी नींद आयी अर्थात् गहन सुषुप्ति का आनन्द लेने वाला वही है एवं स्वप्नावस्था में वही स्वप्न में दिखाई देने वाला देश भी बना है तथा स्वप्न का सारा दृश्य उसी की कल्पना है स्वप्न साक्षी भास ही होता है तथा जाग्रत में इन्द्रियों के माध्यम से समस्त अनुभव साक्षी को ही हो रहा है सारा व्यवहार साक्षी से ही हो रहा है। जैसे सोने के जेवर की सभी आकृतियाँ कल्पित होती है। सोना ही सत्य है। औजारों में लोहा सत्य है। घड़ा सकोरा आदि में मिट्टी सत्य है। इसी प्रकार सृष्टि में चेतन ही सत्य है। उसका स्वरूप आनन्द है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप ही हमारा तुम्हारा सारी सृष्टि का मैं है। इस 'मै' का अनुभव हम जिज्ञासु होकर सद्गुरू की कृपा से स्वाध्याय एवं सत्संग से ही केवल मनुष्य योनि में जान पाते हैं इसी के कारण मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। अगर हमने शरीर रहते यह ज्ञान प्राप्त कर लिया तो हमारे मनुष्य जीवन में एक परमशान्ति का अनुभव होता है जो कि हमें उत्साह एवं आनन्द से ओत–प्रोत रखता है तथा जीवन में कर्मठता को बनाये रखता है। हम सदैव अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं और हर परिस्थिति में प्रसन्न रहते हैं।

–संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी

पृष्ठ स0 3 : जनवरी 2010

* * * * * *

अविद्या

" असतो मा सद्गमय "

संसार में ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी जानने में आ रहा है वह सब असत् है, यह ईश्वर की अनादि माया का ही कार्य है। सृष्टि में एक सत् ही है सत् में ही असत् रूपी कारण माया अर्थात अविद्या जिसे ज्ञानी जन अज्ञान भी कहते हैं से ही प्रतीत हो रहा है। श्री मद् भागवत गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है–

'' नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः''

सत् का अभाव नहीं है एवं असत् का अस्तित्व नहीं है। हम जन्म से ही अपने को शरीर जानने लगे हैं शरीर की माता को पहचाना और माता ने पिता की पहचान करायी। इस प्रकार से माता के द्वारा शरीर के सम्बन्धियों से घर – परिवार से ग्राम अथवा शहर से, राष्ट्र से एवं मत मजहब ये जुड़ गये हैं सारा व्यवहार शरीर से ही शरीर को ''मै'' मानकर हो रहा है। जब हम विवेक करते हैं तो अनुभव करते हैं कि हमारा शरीर एक यंत्र की तरह कार्य कर रहा है और शरीर का समस्त संचालन अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) के द्वारा हो रहा है। जब अंतःकरण सुषुप्ति में चला जाता है और हमारी वासनाएं बीज रूप में चली जाती हैं तब भी कोई जागता रहता है, जो गहन सुषुप्ति से हमें जगाता है। हमारे सुषुप्ति अवस्था में होने पर जब कोई भी व्यक्ति हमें नाम लेकर पुकारता है तब हम सुषुप्ति से जाग जाते हैं। वह कौन है? जो हमारे अन्दर लगातार जाग रहा है? उसी का नाम सत् है वही चेतन स्वरूप जानने वाला है। उसी को जानने के लिए शिष्य कहता है –

''असतो माँ सद्गमय, तमसो माँ ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतगमयः।''

वह सत् ही हमारी आत्मा है, हमारा असली ''मै'' है। संसार में रहकर, व्यवहार करते हुये ही इसी सत् को जानना है। सत् को जानने पर ही असत् से वैराग्य होता है, बिना असत् से वैराग्य हुए हम सत् को पहचान भी नहीं सकते , सत् की पहचान ही सत् में एक होना है। वह सत् ही सृष्टि का प्रकाशक है ज्ञान स्वरूप है ग अनादि है तथा अनन्त है। माया भी अनादि है, माया का कार्य सृष्टि अनादि है, अविद्या अथवा अज्ञान यह भी अनादि है किन्तु अपने स्वरूप का ज्ञान होने से अविद्या कट जाती है। ज्ञान केवल अज्ञान का विरोधी है, प्रतीति का विरोधी नहीं है इसलिए संसार की प्रतीति रहती है, संसार में व्यवहार होता रहता है।

संसार के समस्त कार्य करते हुए राजा जनक जी विदेह कहलाए, राम ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, ताड़का एवं सुबाहु का वध किया, धनुष यज्ञ में धनुष तोड़कर सीता जी के साथ पाणिग्रहण किया, दशरथ की आज्ञा से अयोध्या का राज्य छोड़कर वन गमन किया, रावण का वध किया, वन से लौटकर अयोध्या की गद्दी पर आसीन हुए, भारतवर्ष में आठ प्रमुख राज्यों की स्थापना की, लवकुश जैसे गुणवान पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद भी उनके ज्ञान में कोई फर्क नहीं पड़ा। ज्ञानी का सारा व्यवहार संसार के असत् जानकर एवं आत्मा को ही सारी सृष्टि का अधिष्ठान रूप आधार जानकर ही होता रहता है उसी सत् को जानने के लिए शिष्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू की शरण ग्रहण करता है। तब गुरू उससे कहते हैं कि वह ब्रह्म तू ही है ''तत्त्वमसि''।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ सं0 29 : जुलाई 2012

* * * * * *

आत्मा ब्रह्म स्वरूप

परम तत्त्व को जानने के लिये जब हम विचार करते हैं तब सर्वप्रथम विचार आता है कि यह संसार क्या है ? मैं और तुम के रूप में कौन है, मैं कहाँ से आया हूँ, मेरी माता कौन हैं एवं मेरे पिता कौन है?

इस सृष्टि में दो ही चीजें हैं, दृष्टा एवं दृश्य। दृष्टा का कभी अभाव नहीं होता जबकि दृश्य क्षण–क्षण में बदलता रहता है। दृश्य है नहीं, मात्र स्वप्न की तरह प्रतीत होता है। दृश्य जिस अधिष्ठान में प्रतीत हो रहा है, वह ''मैं'' सत्य है क्योंकि मेरा कभी अभाव नहीं है। मैं ही जाग्रत में विश्व के रूप में प्रतीत हो रहा हूँ। जिस प्रकार स्वप्न का सारा दृश्य स्वप्न दृष्टा ही स्वप्न पुरूष बनकर देखता है इसी प्रकार मैं ही, सारी सृष्टि का प्रकाशक होता हूँ। जिस प्रकार से रस्सी में किसी को सर्प दिखायी देता है, किसी को माला नजर आती है जबकि माला या सर्प दिखने का कारण प्रकाश की कमी होती है। इसे वेदान्त के शब्दों में रस्सी का अज्ञान कहेंगे। सत्य का न दिखना एवं जो वस्तु है ही नहीं, उसके प्रतीत होने को वेदान्त ने माया कहा है। जाग्रत अवस्था में इंद्रियों के माध्यम से हम संसार में जो भी दृश्य देखते हैं वह सब इस प्रकृति का ही विलास है। इस प्रकृति का ही नाम माया है इसी को अविद्या कहा गया है, अविद्या का अर्थ है कि जो कुछ भी दिखायी दे रहा है वह विद्यमान नहीं है वह मात्र इंद्रजाली की माया है। यह इंद्रजाली और कोई नहीं, सत् ही इंद्रजाली है वही चेतन बनकर यहाँ विश्व, तेजस् एवं प्राज्ञ के रूप में धारण करता है। यही विराट है जो विश्व का प्रकाशक है विश्व यानि जाग्रत का दृष्टा जो इंद्रियों के माध्यम से इंद्रिय के देवता की उपस्थिति में जाग्रत के दृश्यों का प्रकाशक है। समस्त विश्व का प्रकाश होने से इसी का नाम विराट है तथा स्वप्न के दृश्यों के प्रकाशक को तेजस् कहा है सारे सूक्ष्म जगत का प्रकाशक होने से इसी का नाम हिरण्यगर्भ भी है।

जब हम प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं तब हमारी समस्त वासनायें बीज के रूप में मन एवं बुद्धि में विद्यमान रहती हैं। इसी का नाम प्राज्ञ है, समष्टि का बीज जो प्रलयावस्था में अपने अंदर समेट लेता है तथा सर्ग (सृष्टिकाल में) की स्थिति में वही पुनः सृष्टि को प्रकट कर देता है उसी का नाम ईश्वर है। जिस प्रकार आत्म चेतन ही जाग्रत में विश्व है। स्वप्न में तेजस् है तथा सुषुप्ति में वही प्राज्ञ है। वही आत्मचेतन समस्त प्राणिमात्र की आत्मा होने से परमात्मा है इसी का सामवेद के छादोग्योपनिषद् में तत्त्वमसि के द्वारा उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाया कि जिस प्रकार एक मिट्टी के जानने से समस्त घड़ा, सकोरा मिट्टी के रूप में जान लिये जाते हैं कि सबमें वह मिट्टी एक ही है।

इसी प्रकार सारी सृष्टि एक ही सत् व्यापक है वही हमारी आत्मा है उसी का नाम ब्रह्म है। जो कुछ भी दृश्य दिखायी दे रहा है वह सत्य नहीं है इसमें सत्य केवल वह सत् ही है, जो सर्वाधिष्ठान एवं सर्वावभासक (सबका प्रकाशक) आनन्द स्वरूप है वही मैं हूँ। वही तू है उसी का नाम तत् है वही आत्मा के रूप में त्वं हैं।

–संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी

पृष्ठ 28, जनवरी 2012

* * * * * *

ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू

ब्रह्म विद्या किसी जाति विशेष या किसी विशेष सम्प्रदाय की, किसी गुरू विशेष के द्वारा गठित नहीं है यह मनुष्य मात्र को जीव भाव से ऊपर उठाकर आत्मा को ब्रह्म के रूप मे लिखाने वाली विद्या है जो मनुष्य अपने को ब्रह्म के रूप में पहचान लेता है वह सामान्य भाव से ऊपर उठकर सत्य का जिज्ञासु होता है। सत्य का जिज्ञासु जब यह विचार करता है कि इस सृष्टि में जो कुछ भी हम देख रहे हैं वह सब का सब मरणधर्मा है जो कुछ भी पैदा हुआ है वह रहता नहीं सब का सब एक दिन काल के द्वारा नष्ट हो जाता है अर्थात् इस सृष्टि में जो कुछ भी पैदा हुआ है वह एक दिन अवश्य नष्ट होगा इस मरणधर्मा सृष्टि में उस तत्त्व की जिज्ञासा करता है जो हमेशा रहने वाला है जिसमें ये सब प्रतीत हो रहा है सृष्टि के पहले भी था और सृष्टि के बाद भी रहेगा। एवं उसी में सारी सृष्टि प्रतीत हो रही है इसी जिज्ञासा को श्रुति कहती है ''असतो मा सद्गमया'' यह सत् दृष्टि का अधिष्ठान है इसका कभी जन्म नहीं हुआ इसी को अनादि सत्य कहते हैं जो अनादि है इस काल नहीं खाता इसी अनादि सत्य में काल कल्पित है यह अनादि सत्य ही अनन्त है इसका कहीं अभाव नहीं है इसी को सर्वत्र कहा गया है यही सारी सृष्टि का प्रकाशक चेतन ब्रह्म है इसी में स्थित होकर जीव सुखी हो जाता है यही आनन्द का स्वरूप है जब जीव इस मरणधर्मी संसार से पलटकर अर्थात् इन्द्रिय सुख से वैराग्यवान उस परमतत्त्व को जानने के लिए गुरू की तलाश करता है और उसे जब श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू प्राप्त होते हैं सद्गुरू उसे उस सत्य को जिसका वह जिज्ञासु है अपने में ही दिखा देते है वह उससे कहते हैं कि तुम विचार करो कि तुम्हारे इस शरीर में वह कौन है जो नेत्रों में बैठकर देख रहा है, और कानों में बैठकर सुन रहा है, त्वचा से स्पर्श का अनुभव कर रहा है, जिव्हा में स्वाद को चख रहा है, नासिका में गंध को पहचान रहा है यह चेतना किसकी है? वह कौन है जो वाणी से बोल रहा है एवं कर्मेन्द्रियों से अर्थात् हाथ, पैर, शिशिन, गुदा, आदि से क्रिया कर रहा है क्या यह ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ स्वयं चेतन है? या इनको कोई चला रहा है तब वह इनके मूल में मन बुद्धि को पाता है जब वह गहराई से विचार करता है तो मन बुद्धि को भी जड़ पता है। और वह इन सबके मूल में अपनी आत्मा को पाता है गुरू के मार्ग दर्शन में जब आत्मा को '' मैं '' के रूप में पहचान लेता है और अपनी यह शरीर वाली मैं से ऊपर उठ जाता है और अपनी मैं को आत्मा के रूप में पहचानने लगता है श्रोत्रिय सद्गुरू उसको उपदेश करते हैं कि वह ब्रह्म तू है ''तत्त्वमसि'' का उपदेश ही उसकी सत् में स्थिर कर देता है और वह अपने को ब्रह्म रूप में पहचान कर समस्त इन्द्रिक वासनाओं से विनिर्मुक्त होकर आनन्द में स्थित हो जाता है।

—संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ सं0 3 : फरवरी 2013

* * * * * *

ब्रह्मविद्या

हमारा जीवन मन और बुद्धि के सहारे से चारों ओर के सामाजिक वातावरण के प्रभाव के अनुसार तथा अपने परिवार के स्तर से जीवन पथ पर बढ़ता जाता है उसमें सबसे अधिक दृष्टि हमारी अर्थ पर ही रहती है, क्योंकि यह युग अर्थ प्रधान कहा जाता है लेकिन यदि हम विचार करें तो हमारे सबके जीवन का लक्ष्य सुख है सुख का मूल शान्ति है जिसमें अर्थ भी एक पहलू है। हमारे जीवन में अर्थ धर्म काम एवं मोक्ष (मोक्ष यानि कामनाओं से निवृत्ति) इन चारों पुरूषार्थों का समन्वय होना चाहिए।

ब्रह्म विद्या हमें असत् से सत् की ओर ले जाती है इस सृष्टि में दो ही चीजें है सत् और असत्। सत् का न कभी जन्म हुआ है न कभी अभाव होता है वह सर्वत्र नित्य है तथा वह अधिष्ठान रूप से सबमें है।

असत् यानि संसार! केवल प्रतीति मात्र है जैसे लोहे में तवा, चमीटा, कढ़ाई अलग–अलग वस्तुऐं प्रतीत हो रही हैं और उनके काम भी अलग–अलग हैं लेकिन सबके सब लोहा रूपी अधिष्ठान में प्रतीति मात्र हैं उन सबमें लोहा ही सत्य है। इसी प्रकार संसार की भिन्न–भिन्न वस्तुऐं जैसे – पृथ्वी, पहाड़, वृक्ष, नदी, समुद्र उनमें रहने वाले पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि यह सब पंचभूतों से ही प्रतीत हो रहे हैं अगर हम विचार करके देखें तो घड़े का अस्तित्व मिट्टी से अलग नहीं है मिट्टी घड़े में प्रविष्ठ नहीं हुई। मिट्टी घड़े में प्रतिष्ठ होते हुए भी, अप्रविष्ठ है। मिट्टी के बगैर घड़े का अस्तित्व नहीं लेकिन घड़ा रहे तो भी मिट्टी है और घड़ा न रहे तो भी मिट्टी ज्यों की त्यों है घड़े के रहने न रहने से मिट्टी पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

इसी प्रकार यह संसार सत् रूपी मिट्टी से असत् ही प्रतीत हो रहा है, जो इन आकृतियों के राग द्वेष में फंसा है वही अज्ञानी है और सब जीवों के अन्दर विद्यमान आत्मा रूपी सत् को जिसने 'मैं' के रूप में पहचान लिया है उसी ने वास्तव में सत् स्वरूप परमात्मा के दर्शन पा लिए हैं।

उस परम तत्त्व के दर्शन केवल 'मैं' रूप में ही अनुभव होते हैं जो परमात्मा को सारी सृष्टि का रचयिता जानकर अपने से अलग परोक्ष रूप से ईश्वर की उपासना करता है वह भक्त है तथा जो इस संसार को सत्य जानकर उसके भोगने की इच्छा रखता है वह विषयी है जो कुछ भी विचार नहीं करता और बैलों और गधों के समान केवल पेट भरने एवं परिवार पालन में लगा है वह पामर है।

ज्ञानी उस परम तत्त्व का जो सबमें रहकर सबसे न्यारा है सबका प्यारा है उसको अपने आत्मा में ही 'मैं' के रूप में पहचानता है वही वास्तव में असली परमात्मा के दर्शन करता है। परमात्मा को 'मैं' के रूप में जानना ही ज्ञान है।

– संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ सं0 3 : फरवरी 2014

* * * * * *

सच्चिदानन्द

तुम सच्चिदानन्द हो, यह गुरूदेव का आर्शीवाद है। हम सत् है सत् को पहचाने सत् में स्थित हो, सत् से ही हमारा प्यार हो सत् का ही हमारे जीवन में महत्व हो। कोई असत् से हमें ठगता है तो कोई सत् के धोखे मं ही ठगता है। जब तक हम उसके व्यवहार को सत् समझते हैं तभी तक हम उस पर श्रद्धा करते है। जब हम ठगे जाते हैं और उसका असत् रूप हमारे सामने आता है। तब हम उससे विलग हो जाते हैं। उस समय हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हमारी बुद्धि ने भले ही धोखा खाया, परंतु हम अपनी बुद्धि को सत् से विलग न करें! जिस प्रकार से पत्नि पर हम अपना पूरा नियंत्रण रखते हुए अपने अनुकूल चलाना चाहते हैं। हम यह भी नहीं देख सकते कि वह अन्य किसी से हमारी तरह घुलमिल जाए अथवा जैसी समरसता हममें है, वैसी ही किसी अन्य में हम नहीं देख सकते हैं। फिर हम सत् स्वरूप होकर, अपनी बुद्धि को असत् से क्यों जुड़ी रहने देते हैं?

इसका कारण यही है कि हमने अपने को सत् स्वरूप पहचाना नहीं और असत् संसार जो बच्चों के खेलने का खिलौना जैसा है, हम नादान होकर उसी संसार में रम जाते हैं। यदि हम अपने को सत् स्वरूप जान लें अपने चेतन स्वरूप को पहचान ले, तो हमारे सिवाय कोई चेतन नहीं है। जानने वाले कम ही है, जो हर एक जीव के शरीर में आत्मा बनकर विराजे हैं और बुद्धि में बैठकर इस संसार में जीव के शरीर को ''मैं'' मानकर व्यवहार कर रह हैं। अपने निज स्वरूप को भूले हुये हैं, यह संसार हमारी भूल से ही चल रहा है। इस भूल को सुधारने के लिए परमात्मा ने मनुष्य योनि दी है, जिसमें इतनी सामर्थ्य है कि वह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को पहचान सकती है। इसलिए हमारे मनीषियों ने संसार में विरत होकर, अरण्य में बैठकर अरण्य का तात्पर्य है कि जहाँ किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं किसी प्रकार की वासना नहीं और न ही कोई द्वंद हो जहाँ पर केवल तत्त्व जिज्ञासु ही उनके शिष्य के रूप में थे, वहीं उन्होंने शिष्यों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए ब्रह्म विचार किया। इस सृष्टि के कर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता के रूप में केवल वही तत्त्व पाया, जो तत्त्व सब जीवों में आत्मा के रूप में विराजमान है, वही तत्त्व हमारे अन्दर भी विराजमान है। वह ही सत्–चित् है जो अपने को जान रहा है, संसार को भी जान रहा है और अपने कर्तव्यों को भी कर रहा है। वह चैतन्य अबाध गति से सूर्य बनकर सबको प्रकाशित कर रहा है एवं चन्द्रमा बनकर समस्त शरीरों को पुष्ट कर रहा है।

श्रुति कहती है– ''ईश्वर है जो सबके हृदय में विराजमान है एवं सबको देख रहा है सबका दृष्टावान है, वही साक्षी परमात्म – तत्त्व है। वह ही सब देश में व्यापक है, उसका कही भी अभाव नहीं है। उसी का नाम विष्णु है, वह ही सबको आच्छादित किए हुए है, वह ही सबका नियंता है। उसके लिए श्रुति कहती है–

ॐ ईशा वास्ममिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जांथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

सबमें ईश्वर का वास देखते हुए अपना एवं अपने परिजनों का पालन एवं कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। सारी सृष्टि परमात्मा का ही शरीर है, उसके सूर्य–चन्द्र नेत्र हैं आकाश उदर है, अग्नि मुख है, अन्तरिक्ष सिर है, नदियाँ नाड़ियाँ है, जल मूल स्थान है, पृथ्वी पैर हैं! उसी का नाम जाग्रत अवस्था में वैश्वानर है, स्वप्न में तेजस् है एवं सुषुप्ति में प्राज्ञ है! जो सुषुप्ति में प्राज्ञ है वही ईश्वर है, जो स्वप्न में तेजस् है वही हिरण्यगर्भ है, जो जाग्रत में वैश्वानर है वही विराट है! वही सत् है चेतन हे, वही आनन्द स्वरूप है। वही हमारा ''मै'' है, बस उसको पहचानने भर की देर है विचार करें तो पायेंगे कि ''मै'' के अतिरिक्त इस सृष्टि में कुछ भी नहीं ''मै'' ही इस सृष्टि में सब रूपों में नजर आ रहा हूँ।

मैं ही सब रूपों में सत् भास रहा हूँ, मैं ही चेतन बनकर दृष्टा साक्षी की भाँति देख रहा हूँ जान रहा हूँ कि यह मेरा ही स्वरूप है, मैं सच्चिदानन्द हूँ। अपने आनन्द को कहीं खोजना नहीं आनंद केवल अद्वैत में है।

–संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ट स0 13 : फरवरी 2011

* * * * * *

ज्ञान संस्कृति संबर्धन में सहायक

हम सच्चिदानन्द स्वरूप है यह सत्य अज्ञान से ढका होने के कारण हम आनंद जो हमारे जीवन का लक्ष्य है उसे संसार की वस्तुओं में खोजते है जबकि आनन्द हमारा स्वरूप है अगर हम वैज्ञानिक पद्धति से अपने दर्शन यानि वेदान्त के अनुसार अपने जीवन को ढाले तो हम सहज ही अपनी परम्परा में रहते हुये एवं अपनी संस्कृति के अनुसार जीवन यापन करते हुए सोपान दर सोपान चलते हुए जीवन के चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं तथा अपना जीवन सहज सुख में व्यतीत करते हुए ग्रहस्थ आदि आश्रम के सम्पूर्ण दायित्वों को भी निभा लेते हैं तथा कर्म करते हुए कर्मों में आसक्त नहीं होते। कर्म हम करते नही है। बल्कि कर्म करना हमारा स्वभाव है मनुष्य अपनी प्रकृति से बँधा हुआ है प्रकृति मुनष्य को अपने गुणों द्वारा मोहित किये रहती है यही उसका बाँधना है। प्रकृति के गुण सत्, रज, तम् है। सतोगुण में ज्ञान होता है रजोगुण में क्रिया होती है। तमोगुण आलस्य एवं प्रमाद की ओर ले जाता है शरीर की दृष्टि से यह तीनों गुण आवश्यक है यदि शरीर को विश्राम न मिले तो नवीन शक्ति का संचार भी न हो। प्रकृति के इस स्वभाव को यदि हम समझकर अपने जीवन का लक्ष्य पहचानकर अपनी दिनचर्या सुनियोजित करे तो हम हर परिस्थिति जो देश काल के अुनसार बदलती रहती है अपने को सहज सुखी बना सकते हैं। हमें अपने जीवन का लक्ष्य पहचानना होगा। मनुष्य जीवन का लक्ष्य संसार से इन्द्रियों द्वारा भोगे जाना वाली विषय वासनाओं को अपने अंदर भरकर अपने अन्तःकरण को गन्दा बनाना नहीं है बल्कि जन्म जन्मान्तर से भरी हुई वासनाओं की सफाई करना है। अध्यात्म ज्ञान वह साबुन है जो मैल को निकालकर स्वयं भी जल के द्वारा मैल के साथ धुल जाता है और फिर स्वच्छ वस्त्र की भाँति हम सच्चिदानन्द स्वरूप में चमकते है ज्ञान हमारा स्वरूप है। ज्ञान को ज्ञान के द्वारा ही जाना जाता है तथा ज्ञान ही जानने योग्य है।

योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा–

"ज्ञानम् ज्ञेयम् ज्ञान गम्यम्

ज्ञान बुद्धि की वृत्ति में होता है लेकिन अपने को ज्ञान स्वरूप जानने के बाद हम बुद्धि सहित अन्तःकरण यानि सूक्ष्म शरीर यानि समस्त सृष्टि का बाध करके अपने स्वरूप में स्थित होकर समस्त व्यवहार करते हैं।

हमारा व्यवहार देश, काल परिस्थिति के अनुसार होता है लेकिन हम तत्त्वतः अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं। उदाहरण के तौर पर समर्थ गुरू रामदास एवं गुरू गोविन्द सिंह जैसे महापुरूषों ने देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार अपने को परिवर्तित किया। आज की परिस्थिति में भी हमें आवश्यकता है अपने तत्त्व ज्ञान को हृदयंगम करके तत्त्वतः अपने स्वरूप में स्थित होकर व्यवहार करें तथा आने वाली पीढ़ी विकृत संस्कृति वाला होने से बचायें।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा

पृष्ठ सं0 3 : वर्ष 2008

* * * * * *

नारायण

यथाकाश स्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रो महान्।

तथा स्र्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। गीता 9:6

जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ, सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति वाले होने से सम्पूर्ण भूत ईश्वर में स्थित है।

समाज में हम लोग साधारण चर्चा में बोला करते हैं कि ''अन्तर्यामी जाने'' यह अन्तर्यामी ही ईश्वर है, इसी का नाम नारायण है। पौराणिक भाषा में विष्णु का निवास क्षीरसागर में बताया गया है विष्णु के नाभि कमल से ही ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई और विष्णु भगवान के कानों के मैल से दो राक्षस मधु और कैटभ नाम के उत्पन्न हुए। उन दोनों राक्षसों के भय से भयभीत होकर ब्रह्मा जी ने विष्णु भगवान की स्तुति की, फलस्वरूप विष्णु भगवान ने जागकर राक्षसों को देखा। राक्षस विष्णु भगवान से युद्ध करने को उद्यत हुए तथा वह युद्ध पांच हजार वर्षों तक चलता रहा। जब युद्ध में न तो विष्णु भगवान ही पराजित हुए और न ही वे दोनों राक्षस ही। दोनों राक्षसों ने प्रसन्न होकर भगवान विष्णु से कहा – हम तुम पर प्रसन्न हैं, हम दो है और तुम अकेले हो फिर भी हम दोनों मिलकर भी तुमको पराजित नहीं कर पाए, इसलिए हम तुमको वरदान देना चाहते हैं जो इच्छा हो सो मांग लो। विष्णु भगवान बोले यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दें कि हम आपको मार सकें। मधु कैटभ बोले – ठीक है! यदि आप हमें मारना चाहते हैं तो आपको हमें ऐसे स्थान पर मारना होगा जहाँ जल न हो।

विचार करने की बात है कि यह मधु कैटभ कौन है और ब्रह्मा कौन हैं तथा क्षीरसागर क्या है? हमारा हृदय ही क्षीरसागर है। सर्वव्यापी चेतन ही हृदय में ईश्वर नारायण एवं विष्णु भगवान आदि नामों से जाने जाते हैं। यही चैतन्य अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार के रूप में चतुर्मुख ब्रह्मा हैं यह मधु कैटभ कौन हैं? हमारे अन्तःकरण में राग एवं द्वेष तथा अन्य द्वन्दात्मक भाव हैं। यही हमारे राग द्वेष शत्रु बनकर हमको खाने के लिए तैयार हैं इनको मार सकने में विष्णु भगवान समर्थ नहीं हो पाए जब तक कि उन्होंने स्वयं ही अपने मारने का उपाय नहीं बताया।

विचार करने की बात है कि ''जल क्या है।'' यह हमारी इन्द्रियों में जिव्हा का नाम ही रसना है। यह रसना हमारी स्वाद इन्द्रिय भी है तथा वाणी भी। कर्मेन्द्रिय के रूप में वाणी है एवं स्वादेन्द्रिय के रूप में रसना है। जब तक हम इस रसना यानी भोजन पर नियंत्रण नहीं पा लेते, तब तक रसेन्द्रिय पर नियंत्रण के लिए प्रयास जारी रखना पड़ेगा। स्वाद पर विजय पाने का अर्थ भोजन का त्याग करना नहीं है अपितु भोजन पर नियंत्रण रखना हैं भोजन का प्रभाव हमारी वाणी पर रहता है, पेट में ही इस चलते – फिरते शरीर रूपी वृक्ष की जड़े हुआ करती है। भोजन परिपक्व, रसयुक्त, चिकना, ताजा तथा स्वादयुक्त होना चाहिए जो पचने में हल्का एवं स्वास्थ्यवर्धक हो। भोजन का प्रभाव हमारी वाणी एवं व्यवहार पर भी होता है, इसी का प्रभाव हमारी वासनाओं पर भी पड़ता है।

इस संसार में पांच विषय शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध है। एक–एक विषय को हम एक–एक इन्द्रिय से ग्रहण करते हैं शब्द का ग्रहण कानों से, स्पर्श का त्वचा से, रस का जिव्हा से,रूप का नेत्रों से एवं गंध का नासिका से होता है। वह पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे शरीर में पाँच खिडकियों की तरह हैं एवं मन जिस इन्द्रिय के साथ होता है उसी विषय का हमें ज्ञान होता है। बिना मन के न तो कोई कर्मेन्द्रिय काम कर सकती है और

परम पूज्य श्री स्वामी
शुकदेवानन्द जी
के शासकीय सेवाकाल
का चित्र

परम पूज्य स्वामी
शुकदेवानन्द जी
अपने
स्वाध्याय कक्ष में

परम पूज्य स्वामी जी के
ग्रहस्थ जीवन का चित्र

ब्रह्मलीन परम पूज्य
श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी

परम पूज्य श्री स्वामी जी
की समाधि यात्रा में
उमड़ा जनसैलाब

पुष्प समर्पित समाधि
स्थल ग्राम–जामुनधाना
(जाखलौन) ललितपुर
(उ0 प्र0)

न ही कोई ज्ञानेन्द्रिय ही। अतः मन ही इन्द्रियों के माध्यम से समस्त विषयों का भोगनेवाला है तथा समस्त इन्द्रियों के राजा के रूप में मन ही काम कर रहा है। मन इन्द्रियों का राजा है भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवत् गीता 10:22 में कहा है कि "इन्द्रियाणां, मनः च अस्मि" इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण), भीतर की इन्द्रियाँ) कहते हैं। इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है। मन रूपी लगाम जब बुद्धि रूपी सारथी के नियंत्रण में होती है तब हमारी संसार रूपी यात्रा सफल होती है। हृदय विशिष्ठ चेतन तभी मधु – कैटभ रूपी राक्षसों पर विजयी होती है यही हृदय विशिष्ठ चेतन नारायण है।

जीव को इसी नारायण को पहचानना है इसकी पहचान करने के लिए संसार पर विजय पानी होगी जो मधु–कैटभ रूपी राग–द्वेष से उत्पन्न हैं। इन पर विजय पाने के लिए इस संसार सार के रस से विरक्त होना जीव के लिए अनिवार्य है।

–संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी, पृष्ठ सं0 8 : 01 फरवरी 2017

* * * * * *

परमात्मा ही आत्मा रूप में

आत्मा स्वयं अकर्ता अभोक्ता अजन्मा एवं प्रकाश साक्षी स्वरूप अनादि एवं अनन्त है। लेकिन आत्मा के ही प्रकाश में सृष्टि का कार्य प्रकृति कर रही है आत्मा अथवा परमात्मा की शक्ति को नाम ही प्रकृति कहते हैं उसी का नाम माया है प्रकृति की अव्यक्त अवस्था को माया अविद्या आदि नामों से कहा गया है जब यह माया व्यक्त होती है तब इसी का नाम महतत्त्व यानि समष्टि रूप बुद्धि हो जाती है। प्रत्येक शरीर में यह महतत्त्व ही बुद्धि रूपा है बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य के क्रिया कलापों का संचालन होता है यह बुद्धि ही मनसहित कर्मेद्रियों की एवं ज्ञानेन्द्रियों की संचालिका है मनुष्य शरीर में परमात्मा ने बुद्धि को भरपूर दिया है मनुष्य चाहे तो बुद्धि के द्वारा अपनी समस्त वासनाओं नियंत्रण रख सकता है और यदि बुद्धि सावधान नहीं है तो मन एवं इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है। यह मन की गुलामी ही मनुष्य के पतन का कारण बनती है बुद्धि के द्वारा मन सहित इन्द्रियों पर नियंत्रण ही तप कहलाता है यही तपस्या मनुष्य की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति हेतु है वेदान्त मनुष्य को बुद्धिमत्ता पूर्वक जीवन जीना सिखाता है मनीषियों ने संसार के कलापों को तीन भागों में विभाजित किया अधिभूत, अधिदैव एवं अध्यात्म।

जब हम केवल अधिकृत पर ही विचार करते हैं तब हम शरीर और इन्द्रियों की गुलामी में फंसते हैं और जब आत्म नियंत्रण करके हम अधिदैव सहित अपनी बुद्धि को उपनिषदीय ज्ञान की ओर ले जाते हैं तब हम हम अपने अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्य नारायण को पहचान जाते हैं उपनिषद का अर्थ है वह ज्ञान जो हमारे अज्ञान को पूर्ण रूपेण समाप्त करे और परमात्मा के अज्ञान को मिटाकर सर्वत्र उसके दर्शन कराये। सर्वत्र परमात्मा के दर्शन करना तथा परमात्मा को अपनी आत्मा के रूप में पहचानना यही ब्रह्म ज्ञान है उस परमतत्त्व की जिज्ञासा जब हमें होती है तभी हम श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष की शरण ग्रहण करते हैं वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू ही हमें परमात्मतत्त्व का ज्ञान कराते हैं और वह उस चैतन्य रूप, संत्स्वरूप, आनन्द स्वरूप, परमात्मा को हमारे "मैं" के रूप में लिखा देते हैं जिसको जानने के बाद फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है तथा जिसको जानकर समस्त दुःखों की निवृत्ति हो जाती है।

–संकलन

पत्रिका गुरू पूर्णिमा, पृष्ठ सं0 3 : जुलाई 2012

गुरू कृपा से निर्वासनिकता

सृष्टि के प्रारम्भ में जब ईश्वर ने अनुभव किया कि मनुष्य भी अन्य जीवों की तरह बहिर्मुख होकर इंन्द्रियों के पोषण में लग गया है वह मुझ सृष्टिकर्ता को जानने का प्रयास ही नहीं कर रहा है तब वह स्वयं गुरू के रूप में अवतरित हुआ। सृष्टि के आदि गुरू पुत्र नारायण है भगवान् नारायण से ही ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ट जी के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पाराशर जी एवं पाराशर जी से व्यास जी हुए। व्यास जी की पूजा आषाढ़; सुदी की पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा या गुरू पूर्णिमा के रूप में की जाती है।

गुरू शिष्य को पशुता से मानवता की ओर मोड़ते हैं पशु में एवं मनुष्य में भूख, प्यास एवं संतान उत्पत्ति की इच्छायें समान रूप से होती है पशु भी सर्दी, गर्मी, वर्षा से शरीर का बचाव चाहते हैं उनको भी शरीर एवं इन्द्रियों का सुख समान रूप से चाहिए। गुरू शिष्य को बताते हैं कि अनुशासन ही जीवन है।

जब शिष्य गुरू को श्रद्धा से परम पूज्यनीय और सर्वज के रूप में अनुभव करता है और उस परमतत्त्व को जो सर्वव्यापी सत् चित् आनन्द है जानने के लिए गुरू से प्रश्न करता है तब गुरू उसे जिज्ञासु जानकार उपदेश करते हैं। शिष्य की तत्त्व के प्रति जिज्ञासा ही ज्ञान की प्रथम भूमिका है। जैसे दो लकड़ी आपस में मथने पर अग्नि प्रकट होती है इसी तरह जिज्ञासु शिष्य के पूँछने पर गुरू उपदेश करता है जो सर्वव्यापी चेतन तत्त्व है वह हमारे तुम्हारे अंदर भी है उसको पहचानो वही सत् है और वही चित् भी है चेतन होने के नाते वही प्रकाशक है वही मन की शान्त अवस्था में हमारे अन्दर आनन्द रूप से प्रकट रहता है इसीलिए उसका एकनाम सच्चिदानन्द है। जब गुरू बताते हैं कि सत् वह है जो सब में व्यापक हो और जिसका जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में अथवा भूत, वर्तमान एवं भविष्य में कभी भी अभाव न हो। हम विचार करते है कि जाग्रत में जो इन्द्रियों के माध्यम से सृष्टि के रूप में जाना जा रहा है एवं जान रहा है वही स्वप्न में अपने संकल्प से नवीन सृष्टि रच करके खड़ी कर लेता है और स्वप्न पुरूष बन करके बिना इन्द्रियों के सारे दृश्य का अनुभव करता है हम विचार करने पर अनुभव करते है कि सारा दृश्य स्वप्न दृष्टा की दृष्टि मात्र था और सुषुप्ति में जब जाग्रत एवं स्वप्न प्रकृति में लीन हो जाते हैं उस समय न देश रहता है न काल रहता है और न कोई वस्तु रहती है सब कुछ प्रकृति में लीन रहता है लेकिन एक आनन्द का अनुभव होता है जिसे हम सो के उठने पर कहते हे कि बहुत अच्छी नींद आयी, बड़े आनन्द से सोए। इसका तात्पर्य है कि हमारे अन्दर रहने वाला चेतन जिसे हम आत्मा कहते हैं वही सर्वव्यापी सच्चिदानन्द है तथा वही सबका प्रकाशक है श्रुति कहती है कि हमारी आत्मा ही ब्रह्म है निर्वासनिक साक्षी, चेतन का नाम ही ब्रह्म है एवं उसी का नाम आत्मा कूटस्थ साक्षी चेतन है, वही चेतन माया से संयुक्त होकर सृष्टि का प्रकाशक ईश्वर है प्रत्येक शरीर में वासना सहित इन्द्रियों का प्रकाशक होने से जीव कहलाता है जब वह बुद्धि के द्वारा यह अनुभव करता है कि मैं मनुष्य, देव, यक्ष पशु, पक्षी आदि शरीर नहीं हूँ तथा मैं मन, बुद्धि, चित्त अहंकार एवं इन्द्रिय एवं राग, द्वेष आदि विकार नही हूँ। मैं केवल प्रकाशक साक्षी चेतन आत्मा हूँ यह सब मुझसे प्रकाशित होने वाले माया से उत्पन्न विकार है मैं केवल साक्षी चेतन आत्मा हूँ मुझ चेतन आत्मा को यह त्रिगुणात्मक माया के द्वारा यह शरीर मिट्टी के घड़े की तरह प्रतीत हो रहा है, घड़े में पानी रखो, दूध रखो अथवा हांडी बनाकर दाल पकाओ मिट्टी पर क्या फर्क पड़ेगा। इसी तरह से मैं सृष्टि का केवल प्रकाशक साक्षी आत्मा हूँ यही गुरू ज्ञान है जो शिष्य निर्वासनिक होकर अपनी इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है। तथा संसार में व्यापार करे, राजनीति करे अथवा उपदेश करे उसे वासना छू भी नहीं सकती। तब वह निर्वासनिक रहते हुए संसार में समस्त व्यवहार करते हुए जीवन मुक्ति का आनन्द लेता है।

–संकलन
पत्रिका बसंत पंचमी
पृष्ठ सं0 3 : जुलाई 2013

* * * * * *

ईश्वरः सर्वभूतानां

परमात्मा के दो रूप हैं। एक दृश्य यानी दृग चेनत, हवा ही दृश्य बनकर सृष्टि के रूप में दिखाई दे रहा है। इस सृष्टि में परमात्मा ही व्यापक हो रहा है। यह व्यापकता ऐसी है जैसे लोहे को यदि हम अग्नि में डाल दें तो अग्नि लोहे में व्यापक हो जाएगी और उसमें किसी को जला सकने की सामर्थ्य आ जाएगी। परन्तु सृष्टि परमात्मा लोहे में अग्नि की भाँति व्यापक नहीं है बल्कि यह व्यापकता समुद्र की लहरो में जैसे जल व्यापक रहता है उसी प्रकार से है लहरे केवल प्रतीति मात्र हैं।समुद्र, जल के अतिरिक्त और कुछ हैं ही नहीं। यह लहरों की प्रतीति परमात्मा में संसार की तरह है। प्रतीति ही माया है इसी का नाम अविद्या है। यह दो तरह की है एक परमात्मा का ज्ञान कराती है और एक परमात्मा के स्वरूप को ढकती है। संसार में प्रत्येक शरीरधारी ज्ञानेन्द्रियों से बाहर देखता है और कर्मेन्द्रियों से कार्य करता है। इन्द्रियाँ बर्हिमुखी हैं इसीलिए इनका नाम ''गौ'' पड़ा। जैसे गाय आदि पशु की दृष्टि इन्द्रियों के भोग पर रहती है, उससे आगे वह और कुछ नहीं सोच पाते।

परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य सर्वोत्तम कृति है।मन, बुद्धि समस्त जंगम प्राणियों में होते हुए भी मनुष्य में सबसे अधिक विकसित है। यह मनुष्य में दो तरह की होती है। एक प्रकार के मनुष्यों में भोगवासना अधिक होती है वह पशुओं की तरह केवल शारीरिक सुख सुविधा स्वयं की अथवा अपने परिवार की ही देखते हैं। ऐसे व्यक्ति मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, ईश्वर क्या है, संसार का कारण क्या है इत्यादि विषयों पर विचार ही नहीं कर पाते या उनको इन बातों के सोचने की फुर्सत ही नहीं होती दूसरे प्रकार के मनुष्य विवेकशील होते हैं वे सत्संग एवं सद्विचारों की ओर आकर्षित हो करके सत्पुरूषों पर श्रद्धा करते हैं। फलस्वरूप उनमें सत् और असत् जानने का विवेक जाग्रत होता है तब उसे असत् से वैराग्य एवं सत् को जानने की जिज्ञासा होती है। ऐसे पुरूषों को तत्त्वज्ञानी गुरू की आवश्यकता महसूस होती है और उसे जब तत्त्वज्ञानी गुरू मिल जाता है तब वह समझता है कि मुझे अमूल्य निधि प्राप्त हो गयी है। वह गुरू के सानिध्य में रहकर सम्यक् प्रकार से विवेक करता है कि सत् क्या है और असत् क्या है? वह देखता है कि जैसे समुद्र की लहरें जल में प्रतीति मात्र थीं उसी प्रकार से परमात्मा रूपी महासागर में यह संसार प्रतीति मात्र है। यहाँ पर कोई चीज स्थिर नहीं, जो कुछ भी है पचंभूतों का संघात मात्र है। अगर हम हिमालय जैसे पर्वत पर विचार करें तो वह बर्फ से ढका हुआ मिट्टी के पत्थर के ढेर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। चाहे वह पत्थर पर्वत की चोटी पर हो या लुढ़क कर नाले में पड़ा हो, है वह केवल पत्थर का टुकड़ा मात्र जिसमें मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

समस्त दृष्टि पंचभूतों से निर्मित है। पंचभूत प्रकृति में कल्पित हैं। पुराणों में वर्णन आया है कि जब महाप्रलय होता है तो पृथ्वी का विलय जल में हो जाता है, जल को द्वादश सूर्यों के उदय होने पर अग्नि अपने में समाहित कर लेती है, अग्नि वायु मे और वायु का विलय आकाश में हो जाता है, प्रकृति परमात्मा का स्वभाव है वह सर्वस्थिति प्रलय रूप में प्रकट होती रहती है। इस प्रकार सत् स्वरूप परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह चेतन, जानने वाला एवं सबके हृदय में विराजमान है।

''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देदशेऽजुन तिष्ठति'' 18:61

दोहा

ध्यान धरें सत् - असत् का, करत जगत उपकार।
सत् को धारण करे जो, पाये शांति अपार।।
कर्म सदा इस भाँति कर करें सदा उद्धार।
छोड़ जगत् को जाए भी याद करे संसार।।

—संकलन

पत्रिका बसंत पंचमी पृष्ठ सं.—3 :22 जनवरी 2018

* * * * * *

हम अविद्याविषयक नामरूपमय उपाधि तथा उसके अभाव के कारण ही एक मात्र (निरूपाधिक) आत्मा की (औपाधिक) विशेषता मानते हैं। बन्ध – मोक्षादि शास्त्र के व्यवहार के लिए ही आत्मा का अविद्याकृत नाम रूप उपाधिमूलक विशेष माना गया है, परमार्थतः तो अनुपाधिकृत एक अद्वितीय तत्त्व ही मानना चाहिए, जो सम्पूर्ण तार्किकों की बुद्धि का अविषय, अभय और शिवरूप है। उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्त्व अथवा क्रिया कारक या फल कुछ भी नहीं है, क्योंकि सभी भाव अद्वैतरूप है।

—प्रश्नोपनिषद

पाठकों से निवेदन

Website:- www. akhandavedanta.com
Email:- neerajnikhra@gmail.com
diszvaibhav@gmail.com

गुरू भक्त अपनी ई—मेल पर ''अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता'' पत्रिका निशुल्क चाहते हैं, तो उपर्युक्त ई—मेल आईडी पर सम्पर्क करके प्राप्त कर सकते हैं।

सतगुरू आरती

मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे ।

जिनकी चरण कमल रज सुन्दर, भव दुख सकल निबारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

दया से जिनकी द्वैत दूर हो, मन की माया टारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

वाणी अमृतमय सुन जिनकी, बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

पाकर के विज्ञान ज्ञान को, पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे।

गुरू अविनाशी घट–घट वाशी, दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

त्वदींय वस्तु गुरुदेव
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पाठकों से अनुरोध

वेदान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव–रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते है। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा।

रचनाएं सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 15 जून 2021 तक अवश्य भेज देवें।

सधन्यवाद — सम्पादक

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस

मुद्रक - वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, झांसी फोन नं. 0510-2332931